thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 31 अगस्त 2014 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 31 अगस्त 2014 से 06 सितम्बर 2014

श्रा.शु. षष्ठी ● वि० सं०–2071 ● वर्ष 79, अंक 123, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 191 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,115 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

सासा राम (बिहार) में पंचदिवसीय वैदिक चेतना शिविर लगाया गया

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा बिहार के तत्वावधान में डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, सासाराम में एक पंचदिवसीय वैदिक चेतना शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर में बिहार जोन–2 के लगीग 42 डी.ए.वी. पब्लिक स्कूलों के लगभग 1000 छात्र–छात्राओं, अध्यापिकाओं एवं अध्यापकों ने सक्रिय भाग लिया।

शिविर का आरम्भ 26 जून को योगाभ्यास एवं हवन यज्ञ से हुआ जिसमें डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री के ब्रह्मत्व में प्रख्यात साहित्यकार डॉ. नन्द किशोर तिवारी एवं बाल रोग डॉ. दिनेश कुमार शास्त्री एवं उनकी धर्मपत्नी ने हवन में भाग लिया। विद्यालय के प्राचार्य डॉ. विष्णुशंकर ओझा ने सभी का स्वागत किया। विद्यालय के छात्र–छात्राओं ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। मुख्य अतिथि श्री अवधेश नारायण सिंह ने अपने आशीर्वचन में वैदिक चेतना शिविर की सफलता की कामना की तथा संस्था द्वारा किये जा रहे कार्यों की सराहना कराते हुए डी.ए.वी. शिक्षण संस्थान को ''गुरूकुल'' की संज्ञा दी।

27,28,29 जून को शिविर का कार्यक्रम प्रातः कालीन सत्र, भोजनावकाश के बाद द्वितीय सत्र और सायंकालीन योगाभ्यास एवं अल्पाहार के बाद तृतीय सत्र के रूप में हुआ। प्रातकालीन सत्रों में सासाराम के विभिन्न संस्थाओं के उच्च पदासीन व्यक्तियों ने हवन यज्ञ में भाग लिया और ''मानव जीवन में वैदिक शिक्षा का महत्व,'' वेदों की अपौरूषेयता,, ''वर्ण व्यवस्था का आधुनिक स्वरूप,'' भक्ष्याभक्ष्य, एवं पंचमहायज्ञ'' जैसे विषयों पर बहुत ही प्रभावपूर्ण प्रवचन हुए। डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, सुश्री अंजली आर्या, पं. दयानन्द सत्यार्थी, पं. धर्मप्रकाश शास्त्री ने अपने उपदेशों एवं भजनों से शिविरार्थियों का मार्गदर्शन किया। इन्हीं दिनों शिविरार्थियों के लिए विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिनमें मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता, लिखित वैदिक प्रश्नोत्तरी एवं यज्ञ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

शिविर के अन्तिम दिन प्रातः कालीन यज्ञ पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के मन्त्री श्री संरेन्द्र कुमार शर्मा एवं सहमन्त्री श्री सत्यपाल आर्य विशेष रूप से उपस्थित हुए, उन्होंने विद्यालय के पूरे परिसर में हो रही यह प्रतियोगिताओं को बहुत ही उत्साह से देखा इससे पूर्व श्री सत्यापाल आर्य जी ने बहुत ही प्रेरणा भाषण से शिविर में भाग लेने वाले छात्र–छात्राओं को सच्चे आर्य बनने का आह्वान किया।

इसी दिन दोपहर के बाद सासाराम नगर में एक विशाल शोभायात्रा का आयोजन किया गया। शोभायात्रा लगभग 3 कि.मी. लम्बी थी जिसमें विभिन्न डी. ए.वी. स्कूलों के छात्र–छात्राओं ने देश भक्ति, पर्यावरण संरक्षण, अंहिसा, भ्रूण हत्या, नशाखोरी, अंधविश्वास, नारी सशक्तिकरण, बाल विवाह, दहेज प्रथा, भ्रष्टाचार आदि महत्वपूर्ण विषयों पर शिक्षाप्रद एवं मनमोहन झांकियॉं निकाल कर लोगों को स्वस्थ तथा सुखद समाज के नवानिर्माण का संदेश देने का सराहनीय प्रयास किया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा से पधारे हुए पदाधिकारियों से इस शोभायात्रा को अतिरिक्त आकर्षण मिला। शिविर का समापन करते हुए डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री ने कहा कि यह शिविर वांछित उद्देश्यों की पूर्ति में सफल रहा। मुख्य अतिथि श्री सुरेन्द्र कुमार शर्मा जी ने आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के राष्ट्रीय प्रधान श्री पूनम सूरी जी के स्नेह, आशीर्वाद एवं सरोकारों का उल्लेख करते हुए शिविरार्थियों के उज्ज्वल भविष्य की कामना की तथा मानवता के विकास में अपनी सहभागिता पूरी ईमानदारी के साथ निभाने की सीख दी।

बिहार आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान डॉ. यू. प्रसाद जी तथा आयोजन विद्यालय के प्राचार्य डॉ. विष्णु शंकर ओझा सहित 40 से अधिक प्राचार्यों ने इस आयोजन को अपना कुशल नेतृत्व प्रदान किया।

हंसराज पब्लिक स्कूल पंचकूला में वेद सप्ताह हुआ सम्पन्न

हंसराज पब्लिक स्कूल में वेद प्रचार सप्ताह का समापन किया गया। इस सप्ताह में विशेष प्रार्थना सभा के माध्यम से वैदिक मंत्रो का पाठ, भजन वेदों का महत्व आदि प्रतिदिन करवाया गया। समापन समारोह पर आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान डॉ. कृष्ण सिंह आर्य (भूतपूर्व प्राचार्य डी.ए.वी. कॉलेज सैक्टर–10, चंडीगढ) विद्यमान थे। उन्होंने सर्वप्रथम हवन करवाया तत्पश्चात् अपने सुविचारों से विद्यार्थियों को कृतार्थ किया। उन्होंने बच्चों को चारों वेदों के बारे में विस्तार पूर्वक बताया। और कहा कि वेदों का मूल उद्देश्य श्रम करने का संदेश देना है। यदि तुम अपनी सच्ची लगन व निष्ठा से काम करते हो तो सफलता अवश्य तुम्हारे कदम चूमेगी।

श्री हंसराज गंधार (सलाहकार डी. ए.वी. प्रबन्धकर्त्री सभा, नई दिल्ली) ने इस अवसर पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि वेदों में लिखी बातों का अनुसरण करना चाहिए तथा उनसे जीवन में सदा आगे बढ़ने की प्रेरणा लेनी चाहिए। एक अगस्त को वेद सप्ताह की कड़ी में स्थानीय राजकीय महाविद्यालय सैक्टर–14 पंचकूला में वैदिक यज्ञ का आयोजन किया गया।

प्रिंसीपल जया भारद्वाज ने डॉ. के एस. आर्य तथा श्री हंसराज गंधार जी का धन्यवाद किया। उन्होंने बच्चों को संबोधित करते हुए कहा कि मनुष्य अपने कर्मों से पहचाना जाता है इसलिए हमें ऐसे कर्म करने चाहिएं जिससे मनुष्य महान बने तथा विश्व में उसका नाम प्रसिद्ध हो।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 31 अगस्त, 2014 से 06 सितम्बर, 2014

जीवन-यज्ञ अविच्छिन्न रहे

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

घृतस्य जूतिः समना सदेवा, संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्तु, अच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः।।

अथर्व 16.58.1

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **यज्ञः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● **(घृतस्य)** आत्मतेज–रूप घृत की **(जूतिः)** वेगवती धारा **(समना)** मन–सहित [और] **(सदेवा)** इन्द्रियों–सहित **(संवत्सरं)** शत–संवत्सर जीवन –यज्ञ को **(हविषा)** हवि से **(वर्धयन्ती)** बढ़ाती [रहे]। **(नः)** हमारा **(श्रोत्रं)** श्रोत्र, **(चक्षुः)** नेत्र [और] **(प्राणः)** प्राण **(अच्छिन्नः अस्तु)** अच्छिन्न रहे। **(वयं)** हम **(आयुष)** आयु से [तथा] **(वर्चसः)** वर्चस्विता से **(अच्छिन्नाः)** अच्छिन्न [रहें]।

● मनुष्य का जीवन सौ या सौ से भी अधिक वर्ष तक चलनेवाला एक यज्ञ है, जिसे 'शत–संवत्सर यज्ञ' भी कहा है जाता है। हम चाहते हैं कि हमारा यह यज्ञ निर्विघ्न चलता रहे। जैसे बाह्य यज्ञ तभी प्रवृत्त रह सकता है, जब उसमें यजमान और ऋत्विजों द्वारा निरन्तर हवि की आहुति पड़ती हे, वैसे ही हमारे इस शरीर यज्ञ के निर्बाध चलते रहने के लिए भी यह आवश्यक है कि इसका यजमान और इसके ऋत्विज् इसे हवि द्वारा बढ़ाते रहें। आत्मा ही इस का 'यजमान' है, मन 'ब्रह्म' है, प्राण 'उद्गाता' है, वाणी 'होता' है चक्षु 'अध्वर्यू' है। अतः आत्मा की आत्म–तेज–रूप घृत की आहुति, मन की प्रबल संकल्प की आहुति और सब ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रयों की अपनी–अपनी ज्ञान–कर्म–रूप हवियों की आहुति हमारे इस 'शत–संवत्सर' जीवन–यज्ञ में पड़ती रहनी चाहिए। यदि आत्मा, मन और इन्द्रिय–देव इस यज्ञ में सहायक नहीं होंगे,तो हमारा यह जीवन – यज्ञ समय पूर्व ही विच्छिन्न हो जाएगा। अतः हमारे श्रोत्र, नेत्र, प्राण आदि की शक्तियाँ प्रअक्षुण्ण रहनी चाहिएँ, जिससे हम चिर–काल तक कानों से शब्द, नेत्रों से रूप, नासिका से गन्ध, रसना से रस, त्वचा से स्पर्श का ग्रहण कर सकें और प्राण–अपना आदि की क्रियाओं को सम्यक् प्रकार से करते रहें। यदि हमारी ये इन्द्रियाँ दुर्बल, या अशक्त हो जाती हैं तो हमारे जीवन की वही अवस्था होगी, जो ऋत्विजों के दुर्बल, अशक्त या उदासीन हो जाने पर यज्ञ की होती है। यदि आयु से तथा वर्चस्विता से अच्छिन्न रहना चाहते हैं, तो हमें अपने जीवन–यज्ञ के यजमान और ऋत्विजों को सबल, सशक्त और निरन्तर जागरूक रखना होगा। हे मेरे आत्मन्! हे मन! हे प्राण! हे इन्द्रिय–देवो! तुम जागते रहो, जीवन–यज्ञ में हवि डालते रहो, यज्ञ को प्रज्वलित, प्रवृद्ध, अच्छिन्न तथा वर्चस्वी बनाये रहो। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

दो रास्ते

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में स्वामी जी ने बताया कि स्वतंत्रता तब आएगी जब गलत और उल्टी विचारधारा बदलेगी । इन तीनों को स्वामी जी ने बच्चों को विचार देने वाले यूनिर्विसटी का नाम दिया। ये ठीक प्रकार से काम करें और अच्छे विचार दे तब जाकर ठीक प्रकार से काम चलता है । परन्तु आजकल जो इसके उलट हो रहा है, उसकी ओर संकेत किया। स्वामी जी ने बताया कि सुविचार से बड़ी कोई शक्ति नहीं है, अच्छे विचार और ठीक विचार यही इस रोग की औषधि हैं । फिर बताया कि अच्छे विचार हैं क्या? विचार ठीक हों तो आदमी स्वयं ही ठीक रास्ते पर चलता है ।

स्वामी दयानन्द से पहले शासकों के अत्याचार से लोग दुःखी थे कि कैसे इस विदेशी राज्य से मुक्ति मिले, स्वामी जी गंगोत्री से गंगासागर और राजस्थान से रामेश्वरम् तक घूमते फिरे कि किसी तरह लोगों से मिलकर काम करने की प्ररेणा दे सकें। मुज्जफरनगर की ग्राम पंचायत से मिले और एक रोजनामचे का संदर्भ उठाकर वहां हुई एक पंचायत की बात बताई जिसमें हिन्दु मुसलमानों और अन्य मजहबों के लोगों ने भाग लिया । इस बैठक में एक हिन्दू दर्वेश को चौकी पर बैठाया गया। और उसने व्याख्यान दिया कि परतंत्रता नर्क और स्वतंत्रता स्वर्ग है । स्वामी जी ने बताया कि ये प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द जी थे जिन्होंने स्वतंत्रता संघर्ष को सफल बनाने के लिए विचार परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की और अपने विचार स्वामी दयानन्द जी को दिए। स्वामी दयानन्द जी ने कहा मैं लोगों के विचार बदलना चाहता हूं । जब तक लोग ठीक विचारधारा को नहीं अपनाएगें तब तक केवल मशीनों से कुछ नहीं होगा ।

विचार ठीक कैसे हों इस विषय में स्वामी जी ने बताया कि इन्द्रियों की दासता का फंदा तोड़ने से मनुष्य सही अर्थों में स्वतंत्र होता है और श्रेष्ठ बनता है । उन्होंने कहा कि इनद्रियों के पीछे न चलो । इन्हें वश में रखो और अपनी इच्छानुसार चलाओ अंत में एक प्रश्न किया – आपको पता है सुख और दुखः का अर्थ क्या है ?

अब आगे ...

ये दोनों संस्कृत भाषा के शब्द हैं। संस्कृत में 'सु' कहते हैं अच्छे को, 'दुः' कहते हैं बुरे को, 'ख' कहते हैं इन्द्रियों को। इन्द्रियों का अच्छा होना, वश में रहना 'सुख' है। इन्द्रियों का बुरा होना, बेकाबू हो जाना 'दुःख' है।

कितनी आसान और सीधी बात है यह ! दुःख चाहते हो भाई, तो इन्द्रियों की गुलामी (आधीनता) करो, इनकी पूजा करो, इन्हें बेलगाम होने दो। और सुख चाहते हो तो इनकी गुलामी (आधीनता) से छुटकारा प्राप्त करो, इन्हें वश में रखो, इनसे आजाद (स्वतन्त्र) हो जाओ, तभी तुम 'श्रेष्ठ।' बनोगे, 'वरुण' बनोगे। यही वरुण के अनुसू सार चलना है।

परन्तु अब आगे बढ़ो। सोम, राजा और वरुण के बाद इस का चौथा शब्द है 'अग्नि'। 'अग्नि' का अर्थ है आग और आग काम है आगे बढ़ना, ऊपर उठना। और मनुष्य के जीवन का ध्येय क्या है? यहि मंत्र का ही आगे बढ़ना, ऊपर उठना।

चलते–चलते कई बार आदमी को ठोकर भी लगती है, वह फिसल भी जाता है, गिर भी जाता है, तो फिर गिरने के बाद क्या करना? अरे भाई! गिर गया तो क्या गिरा ही रहेगा? उठ! फिर आगे बढ़! यह जीवन आगे उठने के लिए है, ऊपर बढ़ने के लिए; बैठ जाने के लिए नहीं। आग को देखो, उसके सामने रुकावट आए तो उसे जला कर आगे बढ़ती है।

आप कहेंगे, आग हर चीज को तो नहीं जलाती। चूल्हे पर तवा रखो, आग नीचे रहती है, तवा कभी जलता नहीं। नहीं भाई! जलता है तवा। नहीं जलता तो चूल्हे पर रखे तवे को कभी हाथ लगाकर तो देखो! आग गर्मी बनकर तवे के अन्दर जा पहुँचती है। इस गर्म तवे के ऊपर चपाती को ज्यादा देर पड़ा रहने दो तो उसको भी आग लग जाती है। नँ, आग रुकावट

thearyasamaj.org

नहीं मानती, आगे बढ़ती है। तुम भी बढ़ो! गिर गए तो चिन्ता नहीं करो। फिर से उठो! रुकावट आ गई तो घबराओ नहीं! रुकावट को दूर कर दो!

आग का एक और गुण है कि वह सदा ऊपर की ओर जाती है इसलिए जाती है कि वह सूर्य का अंश है, सूर्य की ओर जाना चाहती है। तुम भी तो आत्मा हो, मेरे भाई! अपने परमात्मा को पाने लिए ऊपर उठो! आग बनो!

परन्तु आग बनोगे तो किसलिए? क्या इसलिए कि दूसरों को जलाना शुरू कर दो? नहीं, दूसरों को जलाने के लिए नहीं, अपने आप को ऊपर उठाने के लिए आग बनो। हमारे इस शरीर के अन्दर दो प्रकार की आग रहती है– एक को 'जठर' अग्नि कहते हैं, दूसरे को 'वैश्वानर' अग्नि। 'जठर' अग्नि वह है जो मेऽदे (आमाशय) अन्दर खाई हुई चीजों को हज़्म करती है। 'वैश्वानर' अग्नि वह है जो नाभि के पास रहती है। इससे सूक्ष्म प्राण पैदा होता है। यह सूक्ष्म प्राण स्थूल प्राण से मिलता है। इस प्रकार आदमी साँस लेता, जीवित रहता है। ये दोनों प्रकार की आग ठीक तरह काम उस समय करती हैं जब 'सम' अवस्था में हों– बहुत ज्यादा नहीं, बहुत कम नहीं; 'सम' अवस्था में रहना चाहिए इन्हें–

समदोषः समग्निश्च समधातुमलक्रियाः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

"शरीर के अन्दर तीन 'दोष' हैं– वात, पित्त और कफ। ये तीनों सम–अवस्था में रहें तो शरीर ठीक रहता है। ऐसे ही आग भी 'सम' अवस्था में रहनी चाहिए, बाकी चीजें भी। यह सब–कुछ 'सम' अवस्था में; और मन, आत्मा और इन्द्रियाँ प्रसन्न हों तो समझना चाहिए कि यह मनुष्य स्वस्थ है।"

परन्तु आग के 'सम' होने का अर्थ क्या है? यह कि वह बहुत तेज न हो, बहुत कम भी नहीं; जितनी ज़रूरत है बस उतनी रहे। ये माताएँ बैठी हैं न यहाँ, इनसे पूछो, आग के कम या ज्यादा होने से क्या होता है। आग ज्यादा हो तो पतीले में रखी दाल य सब्जी जलके राख हो जायेगी; कम हो तो पकेगी नहीं। कच्ची सब्जी या दाल खाओगे तो हींग का चूर्ण ढूँढते फिरोगे।

एक थी एम. ए. पास लड़की। आजकल की एम. ए. पास लड़कियाँ खाना बनाना जानती भी हैं, बनाती भी हैं। परन्तु मैं जिस लड़की की बात कहता हूँ वह ठीक प्रकार से खाना बनाना जानती नहीं थी। विवाह हो गया उसका। पति के साथ चली गई, रहने लगी, तो एक दिन उसने खाना बनाने की पुस्तक में हलवा बनाने का ढंग पढ़ा। पढ़कर याद कर लिया। पति से बोली– "आज तो मेरा हलवा खाने को जी चाहता है। आज मैं हलवा बनाऊँगी।"

पति ने कहा–"तुझसे हलवा बनेगा नहीं। तू हलवा बनाना जानती नहीं।"

वह बोली–"वाह ! जानती क्यों नहीं ? अभी तो मैंने पुस्तक में पढ़ा है। हलवा बनाने में क्या करना होता है! खाँड की चाशनी बनाओ, सूजी को भून लो। दोनों को मिलाओ तो हलवा बन जाता है। लो, मैं अभी बनाकर लाई। आज और कुछ बनाऊँगी नहीं, आप हलवा खाकर ही दफ्तर जाओ।"

और रसोई में जाकर उसने चाशनी बनानी शुरू कर दी। वह ठीक से पकी नहीं थी कि कच्ची ही उतारकर एक ओर रख दी। तब घी डालकर सूजी को भूना। वह भी पूरी भूनी नहीं थी कि उसमें कच्ची चाशनी डाल दी और कड़ाही में हलवे की बजाय अच्छा–खासा शरबत तैयार हो गया। पति महाशय प्रतीक्षा कर रहे थे; बोले–"अरे भाई! हलवा बन गया हो तो लाओ, मुझे ऑफिस जाना है।"

पत्नी ने उत्तर दिया–"आप तो ज्योतिषी हैं। आप ठीक कहते थे कि मुझसे हलवा नहीं बनेगा। परन्तु हलवा न बने, तो भी शीरा बन ही जाएगा। बस, अब थोड़ी देर है।"

पति ने कहा–"तुमसे शीरा भी नहीं बनेगा।"

वह बोली–"कैसे नहीं बनेगा? अभी तैयार हुआ जाता है।"

और कड़ाही के नीचे उसने दो और लकड़ियाँ चूल्हे में रख दीं। आग तेज़ हुई तो पानी ज्यादा सूख गया, शीरा रहा नहीं।

थोड़ी देर के बाद पति ने फिर आवाज़ दी कि–"शीरा ही लाओ। मुझे जाना है।"

तो बोली–"शीरा तो नहीं बन सका, लप्सी बन जाएगी। बस, थोड़ी देर है।"

पति ने कहा–"तुमसे लप्सी भी नहीं बनेगी।"

वह बोली–"अजी कैसे नहीं बनेगी? बस, अभी लाई।"

और उसने चूल्हे में और लकड़ियाँ डाल दीं। बाकी का पानी भी सूख गया।

पति ने फिर आवाज़ दी तो वह बोली–"लप्सी तो बनी नहीं पंजीरी बन रही है। अभी लेकर आती हूँ।"

पति ने कहा–"तुमसे पंजीरी भी नहीं बनेगी।"

पत्नी ने चूल्हे में दो और लकड़िया डालकर आग को तेज कर दिया सूजी जलने लगी। उसके जलने की दुर्गन्ध पति के पास पहुँची तो वह रसोई में आये। देखा कि कड़ाही में काली राख–सी पड़ी है। बोले "मैंने तो कहा था कि तुमसे पंजीरी भी नहीं बनेगी।"

पत्नी ने कहा–"अब क्या करूँ? यह तो जल ही गई। अब तो इसे फेंकना ही पड़ेगा।"

पति बोला–"तुझे फेंकना भी नहीं आएगा।"

पत्नी ने कहा–"वाह! इसमें क्या है? अभी कड़ाही उठाकर गली में फेंक दूँगी।"

पति बोला–"अच्छी बात है, परन्तु किसी भलेमानस को देखकर फेंकना।"

पत्नी ने खिड़की खोली, कड़ाही को लेकर खड़ी हो गई कि कोई भलामानस दिखाई दे तो फेंकू। गन्दे कपड़ोंवाले कई आदमी गुज़रे, उनपर उसने वह राख नहीं फेंकी। ग्राम का नम्बरदार सफेद कपड़े पहनकर तहसीलदार को मिलने जा रहा था। खिड़की के नीचे पहुँचा तो उसने सारी राख उसके ऊपर फेंक दी। उसके बाद जो हुआ वह अब सोचते रहिए।

परन्तु यह काम करने का तरीका (ढंग) नहीं। आग 'सम' हो, बराबर हो, न कम न ज़्यादा, तभी काम चलता है।

आजकल लोग 'ब्लड प्रैशर' की बीमारी (रोग) की बहुत चर्चा करते हैं, परन्तु 'ब्लड प्रैशर' कोई रोग नहीं। 'ब्लड प्रैशर' न हो तो खून सारे शरीर में पहुंचे किस प्रकार? रोग यह है कि 'ब्लड प्रैशर' जितना होना चाहिए उससे ज़्यादा हो जाय या कम हो जाय। ज़रूरत से ज्यादा होना भी रोग, कम होना भी रोग।

और फिर अग्नि का यह भी गुण है कि उसमें घबराहट नहीं, चिन्ता नहीं, रुकना नहीं, ठहरना नहीं। जबतक आग है तबतक वह आगे बढ़ेगी जरूर। कही एक छोटी–सी चिंगारी भी रह जाय तो धीरे–धीरे आगे बढ़कर वह महाप्रचण्ड ज्वाला बन जाती है। जंगलों और शहरों को नष्ट–भ्रष्ट कर सकती है। ऐसे ही मेरे भाई, निरन्तर आगे बढ़ो! गिर गए तो चिन्ता नहीं। चोट लगी तो घबराओ नहीं। कोई दुःख, कष्ट, मुसीबत आ जाय तो रुक न जाओ। फिर उठो, फिर आगे इस दृढ़ विश्वास के साथ कि जिस मंजिल (ध्येय) तक पहुँचना है पहुँचने से पहले रुकेंगे नहीं, ठहरेंगे नहीं।

अब और आगे चलिए–सोम, राजा, वरुण और अग्नि के बाद पाँचवाँ शब्द है 'आदित्य'। आदित्य उस महासूर्य को भी कहते है सौरब्रह्माण्ड को शक्ति देता है। उस सूर्य को भी जो हमारी पृथिवी को प्रकाश तथा गर्मी देता है और जिसके प्रकाश से उसके गिर्द घूमने वाले बुध, शुक्र, पृथिवी, मंगल, बृहस्पति, शनि और दूसरे तारे चमकते हैं चाँद चमकता है। वेद कहता है, इस आदित्य के अनुसार चलो।

परन्तु यह आदित्य करता क्या है? इसकी चमकती हुई किरण गन्दे कीचड़ भरे तालाब में भी पहुँचती है, सड़ी हुई नालियों में भी उस खारी समुद्र में भी जिसका पानी ज़हर की तरह कड़वा है। हर जगह से वह मीठे पानी को ले लेता है। बुराई को, गन्दगी को कड़वाहट को छोड़ देता है। ऐ इन्सान! तू भी ऐसा सद्गुण ले ले जगह से , अवगुण को छोड़ दे। गन्दगी पर और कूड़े–करकट पर भिनानेवाली मक्खी न बन, शहद की मक्खी बन। मिठास ले हर से, सुगन्ध ले, अच्छाई ले।

इस दुनिया में ऐसे आदमी तो कोई–कोई हैं जिनमें कोई बुराई हो और ऐसे आदमी भी कोई–कोई हैं जिनमें कोई अच्छाई न हो आमतौर से हर आदमी में अच्छाई भी है, बुराई भी; खूबी भी खराबी भी; गुण है तो अवगुण भी। दूसरों से अच्छाई लो, खूबी ले लो, गुण ले लो। उनकी प्रशंसा करो तो ये गुण तुम्हारे अन्दर भी आयेंगे। उनकी बुराई को, अवगुण को, और खराबी को ही देखते रहोगे, उन्हीं के सम्बन्ध में सोचते रहोगे तो याद रखो यह सब कुछ तुम्हारे अन्दर भी आयेगा। कई लोग सत्संग में जाते हैं तो यही देखते हैं कि अमुक आदमी में क्या खराबी है, अमुक में क्या अवगुण यह तो अच्छी बात नहीं है मेरे भाई। ऐसा आदमी तो सत्संग में आकर असल में 'कु–संग' में आता है, 'बुरी संगत' में आता है क्योंकि वह देखता नहीं, बुराई ही देखे जाता है।

परन्तु सूर्य जगह–जगह से मीठे पानी को–लेकर करता क्या है? क्या स्वयं पी जाता है? नहीं। इस मीठे पानी को वह भाप और बादल बनाकर जमीन को वापस देता है ताकि कुएँ–तलाब भर जायँ, नदियाँ भर जायँ, पहाड़ों की चोटियों पर दूध की तरह सफेद बर्फ जाग उठे, खेत लहलहा उठें, बाग झूम उठें, सूखे जंगलों में हरियाली आ जाय, इन्सानों और हैवानों (पशुओं) को पीने का पानी मिल जाय, जो उनके जीवन का आधार है। ऐ इन्सान। तू भी ऐसा कर। गुण है तेरे अन्दर, खूबी है, शक्ति है, धन है तेरे पास, ज्ञान है, विज्ञान है, तू इससे दूसरों का भला कर। उन्हें इस प्रकार प्रयोग कर कि सबको लाभ हो, सब लोग उठें, सब उन्नति करें।

और इसके अतिरिक्त क्या करता है सूर्य? हर समय, हर जगह, हर हालत में केवल प्रकाश देता है; कभी अँधेरा नहीं देता। प्रकाश देता है ताकि लोग वास्तविकता को देखें, सचाई को देखें, ठीक रास्ते पर चलें। भूलें और भटकें नहीं। ऐ इन्सान, तू भी ऐसा कर। दूसरों को प्रकाश दे, उनके लिए अँधेरा पैदा न कर। उन्हें वास्तविकता की ओर, सचाई की ओर, पुण्य की ओर जाने का रास्ता दिखा। उन्हें झूठ, पाप और अज्ञान की ओर ले–जाने का यत्न न कर। उन्हें अच्छे विचार दे। बुरे विचार देकर उन्हें विनाश की ओर ले–जाने का यत्न न कर।

शेष अगले अंक में....

thearyasamaj.org

गुरु विरजानन्द जी की अध्ययन- अध्यापन शैली

● डा. सरोज बाला

वैयाकरण मूर्धन्य, प्रज्ञाचक्षु, आदर्शवादी अध्यापक एवं महर्षि दयानन्द को वेदों का ज्ञान देने वाले गुरु विरजानन्द का जन्म पंजाब के, प्रसिद्ध नगर करतारपुर के निकट गंगापुर गांव में सन् 1778 में हुआ। इनके पिता नारायणदत्त एक सारस्वत ब्राह्मण थे। जब विरजानन्द जी मात्र पाँच वर्ष के थे तब शीतलारोग के कारण उनकी आँखों की रोशनी चली गई। अपितु मन की आँखें आजीवन रोशन रहीं। जिसकी ताकत से उन्होंने अपना सारा जीवन वेद–शास्त्रों के अध्ययन–अध्यापन को समर्पित कर दिया।

सांसारिकता से वैराग्य: स्वामी विरजानन्द जी को पाठशाला में पढ़ने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। अपितु उन्होंने आठ वर्ष की आयु में अपने पिता से व्याारण पढ़ना आरम्भ कर दिया था जिसमें वे शीघ्र ही निपुण हो गए। ग्यारह वर्ष के थे जब इनके माता–पिता का देहान्त हो गया। बड़े भाई का व्यवहार उनके प्रति बड़ा कठोर था। जब वे चौदह वर्ष के हुए तो उन्होंने बड़ी गहनता से सोच–विचार किया कि सांसारिकता से उन्हें कोई लाभ प्राप्त नहीं होने वाला है। ऐसी अवस्था में उन्हें केवल ईश्वर का ही सहारा लेना चाहिए। ऐसा सोचकर वह ऋषिकेश की ओर चल दिए। सांसारिकता से वैराग्य ने उन्हें अध्यापन की ओर अग्रसर कर दिया।

विभिन्न स्थानों की यात्राएँ: जब स्वामी विरजानन्द ऋषिकेश पहुँचे तब उनके पास केवल गायत्री मंत्र की दीक्षा प्राप्त थी। वहाँ वह ध्यान लगाकर घण्टों गायत्री मंत्र का जाप करते रहते। फिर वह ऋषिकेश को छोड़कर कनखल पहुँचे। वहाँ उन्हें संन्यासी पूर्णानन्द जी का सत्संग प्राप्त हुआ। दण्डी जी ने उनसे संन्यास की दीक्षा ली, तभी वह विरजानन्द कहलाए। उन्होंने पूर्णानन्द जी से बहुत कुछ पढ़ा और सीखा। स्वामी विरजानन्द जी के पास चाहे चक्षु नहीं थे परन्तु स्मरण–शक्ति, चिंतन–मनन और धारणा–शक्ति अद्भुत थी। वह पढ़े हुए विषय पर चिंतन–मनन करके अन्यों को भी पढ़ाते जिससे उनका विद्या–बल और अधिक बढ़ जाता था। पढ़ने–पढ़ाने का यह क्रम उनके गम्भीर पाण्डित्य में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। उनकी यही आदत ने उन्हें एक सफल अध्यापक बना दिया।

कलखल में उन्होंने अपनी अद्वितीय स्मरण–शक्ति से सम्पूर्ण 'कौमुदी' के सूत्रों को अर्थसहित कंठस्थ कर लिया। कनखल से काशी की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने काशी में विद्याधर पण्डित के पास 'वेदान्त' मनोरमा–शेखर–न्याय और 'व्याकरण' का अध्ययन किया। वहाँ वह स्वयं पढ़ते और दूसरों को पढ़ाते भी थे। इनकी अद्भुत अध्यापन शैली से प्रभावित होकर विद्यार्थियों की भारी संख्या इनके पास पढ़ने आने लगी। जिसके प्रभाव से वहां वह **प्रज्ञाचक्षु स्वामी** के नाम से प्रसिद्ध हुए।

स्वामी विरजानन्द काशी से 'गया' की ओर रवाना हुए। तत्पश्चात् कलकत्ता भी गए। वह संसार के उपकार और अध्यात्म–शक्ति बढ़ाने के लिए कठिन से कठिन त्याग करने के लिए तैयार रहते थे। आप सम्पूर्ण गंगा तट का भ्रमण कर वापस जिला एटा के 'सोरों' स्थान पर आये और वहाँ कुछ समय रहने का विचार किया। उन्होंने यहाँ पर संस्कृत–व्याकरण सीखने पर अधिक बल दिया। उनके हृदय में 'कौमुदी और 'चद्रिंका' के प्रति असीम श्रद्धा थी।

अल्वर–नरेश को संस्कृत–अध्ययन करवाना: अलवर नरेश गुरु विरजानन्द द्वारा किये जा रहे 'विष्णु–स्तोत्र–पाठ' से बहुत प्रभावित हुए। नरेश के अथाह आग्रह से दण्डी जी अलवर जाने को तैयार हो गए। वहाँ उन्होंने राजा विनयसिंह और उनकी रानियों को संस्कृत का अध्ययन करवाया। राजा विनयसिंह की विद्या–उन्नति की सोच का उदाहरण 'बृहत–पुस्तकालय' आज भी अजमेर में उपलब्ध है। वहीं दण्डी जी ने 'शब्द–बोध' नामक पुस्तक की रचना भी की थी।

गुरु विरजानन्द की मान्यता: गुरु विरजानन्द को इस बात पर विश्वास हो गया था कि भारत की अवनति का कारण मनुष्यकृत ग्रन्थ हैं जिन्होंने चारों तरफ अंधकार और भ्रम फैला रखा है। इसी कारण उन्होंने अपनी पाठशाला में 'कौमुदी' और 'शेखर–मनोरमा–व्याकरण' और 'महाभाष्य' की आवृत्ति करवाते और स्वयं उन्हें कंठस्थ करते जाते। थोड़े ही समय में उन्होंने दोनों ग्रंथों को अर्थसहित कंठस्थ कर लिया।

मथुरा में पाठशाला की स्थापना: गुरु विरजानन्द जी अलवर से गड़ियागांव, वहाँ से मुरसान, वहाँ से भरतपुर, भरतपुर से अध्ययन–अध्ययन यात्रा सम्पन्न करते हुए मथुरा पहुँचे। मथुरा पहुँचकर उन्होंने एक पाठशाला की स्थापना की जो आरम्भ में इनके निवास स्थान पर चलती रही। पाठशाला को अलवर, जयपुर और भरतपुर से आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी और यहाँ शिक्षण–कार्य निःशुल्क चलता था।

पुस्तकों का नदी में विसर्जन करवाना: मथुरा में पाठशाला की स्थापना के थोड़े समय पश्चात् दण्डी जी ने 'पाणिनि' अर्धांश की टीका लिखी, लेकिन उनके मन की भावना थी कि पुस्तकें चाहे मेरी हैं परन्तु हैं तो मनुस्यकृत। इसलिए उन्होंने शिष्यों से पुस्तकों को नदी में बहा देने को कहा। ऐसा निःस्वार्थ और त्याग–भावना से परिपूर्ण अन्य महापुरुष का शायद ही परिचय मिले।

आदर्श–अध्यापक: गुरु विरजानन्द एक आदर्श अध्यापक थे। उनके जिस समय भी कोई विद्यार्थी पढ़ने के लिए आ जाता वह उसी समय उसे सहर्ष पढ़ाना आरम्भ कर देते और बिना थके घण्टों पढ़ाते रहते थे। वह आत्म–प्रशंसा सुनना और व्यर्थ की बातों से समय नष्ट करना अच्छा नहीं समझते थे। वह अपनी कुटिया का द्वार तभी खोलते जब उनके पास कोई पढ़ने आता था। दण्डी जी अपने छात्रों को केवल अक्षर ज्ञान ही नहीं देते थे अपितु भारतीय संस्कृति और नैतिकता से भी उनका पूर्ण परिचय करवाते थे।

निःशुल्क अध्यापन–कार्य: दण्डी जी अपने विद्यार्थियों को निःशुल्क पढ़ाते थे और उनसे कोई अन्य सेवा– कार्य भी नहीं करवाते थे। दण्डी जी रट्टा लगवाकर दिमाग और समय को नष्ट नहीं करते थे अपितु प्रत्येक विषय को अच्छी तरह समझाकर पढ़ाते थे। वह यह भी ध्यान रखने थे कि कोई भी छात्र अशुद्ध उच्चारण न करे। वह पढ़ाने के साथ–साथ छात्राओं के आचरण–निर्माण का भी ध्यान रखते थे। अगर किसी भी विद्यार्थी को कोई कष्ट होता तो वह उसकी हर संभव सहायता किया करते थे।

पाठशाला के नियम: गुरु विरजानन्द ने अपनी पाठशाला के दो नियम निर्मित किए हुए थे जिससे अध्ययन–अध्यापन कार्य सहज हो जाया करता था और विद्यार्थियों को भी सफलता प्राप्त होती थी। प्रथम वह नये विद्यार्थी की मेधा और स्मरणशक्ति की परीक्षा लेते थे और नये विद्यार्थी से पूछते थे कि उसने कोई मनुष्य–कृत–ग्रन्थ पढ़ा है या नहीं। अगर उसका उत्तर हाँ में होता तो वह उसे भूल जाने को कहते तभी वह अपने विद्यार्थी को पाणिनि–कृत व्याकरण पढ़ाना आरम्भ करते थे। यहाँ तक कि वह अपने विद्यार्थियों को मनुष्य–कृत ग्रन्थों को जल में प्रवाहित कर देने का कड़ा आदेश दे देते।

महर्षि दयानन्द का आगमन व सच्चे–शिष्य की प्राप्ति: गुरु विरजानन्द यह सोचकर दुःखी हो रहे थे कि शिक्षण–सुधार और शास्त्र–सुधार का कार्य जो मैंने जीवन–भर किया है; कहीं यह कार्य थोड़े समय की घटना बन कर न रह जाए। मुझे अभी तक मेरा कोई ऐसा शिष्य नहीं मिला जो मेरी मृत्यु के बाद इस सुधार–कार्य को आगे बढ़ा सके। ऐसे में चौंतीस–पैंतीस वर्ष का एक युवक गेरूवा–वस्त्र सुशोभित गले में रूद्राक्ष–माला पहने दण्डी जी की सेवा में उपस्थित हुआ। संन्यासी दयानन्द ने पाठशाला का दरवाज़ा खटखटाया। दण्डी जी ने पूछा कौन है? क्यों आया है? दयानन्द जी ने उत्तर दिया 'कौन' का ज्ञान हो जाता भगवान! तो अब तक भटकता ही क्यों। यही जानने तो आया हूँ। दण्डी जी की अन्तर्दृष्टि ने पहचान लिया कि जिस शिष्य की मुझे तलाश थी ईश्वर ने मेरी कामना पूर्ण कर दी। गुरु विरजानन्द ने जब स्वामी दयानन्द की मेधा और स्मरण–शक्ति की परीक्षा ली तो उन्हें विश्वास हो गया। कि मुझे मेरा सच्चा शिष्य मिल गया जो वेदों के ज्ञान को जन–जन तक पहुँचाने का कार्य करेगा। दूसरी तरफ दयानन्द जी को यह विश्वास हो गया कि उन्हें सच्चा गुरु प्राप्त हो गया है। शिक्षा ग्रहण करने के बाद जब दयानन्द ने गुरुदक्षिणा में अपने गुरु को लौंग अर्पित किए तो गुरु ने उनसे किसी पदार्थ की इच्छा न रखते हुए आजीवन वैदिक–मूल्यों का प्रचार और सामाजिक–सुधार–कार्यों को करने का दृढ़ वचन माँगा। महर्षि ने अपने गुरु के सामने जो समाज व मानवता–कल्याण हेतु दृढ़ प्रतिज्ञा की उसे अपना सर्वस्य समर्पित करके आजीवन कार्यान्वित किया।

निष्कर्षात्मक अभिमत: गुरु विरजानन्द जी के व्यक्तित्व और अध्ययन–अध्यापन की शैली से यही ज्ञात होता है कि उन्होंने बिना चक्षुओं के अपनी आन्तरिक दृष्टि से जो देख लिया वह आँखों वाले भी नहीं देख सकते थे। वह कर्मठ, परिश्रमी, आदर्शवादी अध्यापक और एक उच्च कोटि के समाज–सुधारक के रूप में उभरते हैं जिन्होंने उस समय शिक्षा के जो नियम बना दिए थे कि

शेष पृष्ठ 06 पर ☞

उत्कृष्ट शङ्का समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका – क्या सौ प्रतिशत अच्छे कर्म करने के लिये सन्यास लेना अनिवार्य है या गृहस्थ में रहते हुए भी व्यक्ति सौ प्रतिशत अच्छे कर्म करके मोक्ष में जा सकता है?

समाधान –बिना संन्यास लिए आदमी सौ प्रतिशत अच्छे काम नहीं कर सकता और दुनिया उसको करने भी नहीं देगी। **आप घर में रहो, गृहस्थ बनकर रहो, लोग आपको अच्छे काम करने ही नहीं देंगे।** आपको बुरे कामों में घसीटेंगे। कहेंगे:– "चल भाई! हमारे यहाँ रिश्तेदारी में चल।" आप कहोगे:–" नहीं–नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।" वे कहेंगे:–" अरे! कैसे नहीं जाएगा, तेरे घर में फंक्शन था, तो हम नहीं आए थे क्या? आज हमारे घर में फंक्शन है, तू कैसे नहीं आएगा?" इस तरह आप नहीं जाना चाहेंगे तो भी वे जबरदस्ती घसीट के ले जाएंगे।

जब आप मेरी तरह **संन्यासर बन जाएंगे, तो फिर कौन प्रेशर मारेगा?** फिर कोई नहीं प्रेशर मारेगा। मैं कहूँगा–"मैं संन्यासी हूँ। मैं शादी में जाता ही नहीं। मैं अपने सगे भाई की शादी में नहीं गया तो तुम्हारी शादी में क्या आऊँगा।" अब बताओ, कौन मेरे साथ जबरदस्ती करेगा? इसलिए संन्यास लेना पड़ेगा। तब संसार के लोग आपके ऊपर दबाव नहीं डाल सकेंगे। और तब आप पूरे अच्छे काम कर पाएंगे। अगर आप गृहस्थ बने रहेंगे तो पचार लोग आपको प्रेशर मारेंगे और जबरदस्ती आपसे उल्टे–सीधे काम कराएंगे। इसलिए यदि आप मोक्ष में जाना चाहते हैं तो संन्यास लेना ही पड़ेगा।

शंका–क्या समाधि काल में, योगी के पूर्वकृत कर्म नष्ट हो जाते हैं या बचे रहते हैं? क्या समाधि लगाने से, पूर्वकृत कर्म, बिना फल दिए भी नष्ट हो सकते हैं?

समाधान– समाधि–काल में बाहर के कमा नहीं होते, वो सारे बंद हो जाते हैं।

एक व्यक्ति समाधि लगाता है, ईश्वर की उपासना करता है, तो उसको ईश्वर की अनुभूति होती है, ईश्वर से आनंद मिलता है, ज्ञान मिलता है, बल मिलता है, उत्साह मिलता है, बहुत सारे अच्छे गुणों की प्राप्ति होती है। **समाधि–काल में ईश्वर की उपासना की एकमात्र कर्म होता है।**

समाधि–काल में भी उसके जो पहले किए हुये कर्म हैं, वो जमा रहते हैं। इससे कर्म नष्ट नहीं होते। **दरअसल, कर्म बिना फल भोगे नष्ट होते ही नहीं हैं। वो चाहे समाधि लगाए, या न लगाए। यदि किसी व्यक्ति ने कोई भी कर्म किया है, तो उसका फल निःसंदेह ही पड़ेगा।**

कर्म, बिना फल दिए कभी भी नष्ट नहीं होते, वो हमेशा जमा रहते हैं। जब उनका फल मिलता जाता है तो फल भोगने से वो कर्म हट जाते हैं। मान लीजिए, किसी व्यक्ति के दो हजार कर्म थे। तीन सौ कर्मों का फल मिल गया, सत्रह सौ बाकी रह गए। अब समाधि लगाओ अथवा न लगाओ कोई फर्क नहीं पड़ेगा। वे बचे हुए सत्रह सौ कर्म, फल भोगकर ही नष्ट होंगे, अन्यथा नहीं।

दर्शनयोग महाविद्यालय
रोजड़वन, गुजरात

आस्था के दलदल में

● राजेन्द्र प्रसाद आर्य

आज लोगों को जिस नाम पर सबसे ज्यादा ब्लेकमेल किया जाता है वो नाम है भगवान का, और अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रायः सभी धर्माधिकारियों ने अपने–अपने धर्मालम्वियों को इस बात की सख्त हिदायत दे रखी है कि धर्म और ईश्वर के विषय में बुद्धि का प्रयोग सर्वथा वर्जित है, यह पूरी तरह से आस्था का विषय है। यही कारण है कि लोग ईश्वर के विषय में बताई गई तमाम बातें ठीक उसी तरह मान लेते हैं जिस प्रकार उन्हें बताया गया है, और एक बार जब बिना जाने हुए सब मान लेते हैं तब फिर कुछ जानना भी नहीं चाहते। सिर्फ वैदिक धर्म में ही, जिसका आधार वेद है, किसी बात को तर्क और प्रमाण की कसौटी पर कसकर बुद्धिमता पूर्वक विचार कर मानने का निर्देश है। यदि आस्था के नाम पर व्यक्ति को यह स्वतंत्रता है कि वो जो चाहे माने तो आस्था के नाम पर ही ईश्वर को खुश करने वास्ते बलि और नरबलि देना गलत कैसे? इसे मात्र एक उदाहरण से समझा जा सकता है:–

इसे बहुत कम लोग जानते होंगे पर विज्ञान के अनुसार सूर्य का आकार पृथ्वी के आकार से 13 लाख गुणा बड़ा है अर्थात् 13 लाख पृथ्वी को मिलाकर एक सूर्य का आकार बनता है, और सूर्य की दूरी पृथ्वी से 9 करोड़ माइल दूर है, इतना ही नहीं सूर्य एक जलता हुआ आग का गोला है और सूर्य की उर्जा का मात्र 2 अरबवाँ भाग ही पृथ्वी तक पहुँचता है, अगर सूर्य की सम्पूर्ण ऊर्जा पृथ्वी तक पहुँच जाय तो सबकुछ जलकर भस्म हो जाएगा। कुछ भी नहीं बचेगा। मगर इसी सूर्य के विषय में तुलसी दास ने लिख दिया कि सूर्य को हनुमान जी निगल गये। यह बात किसी की बुद्धि में समाहित नहीं हो सकती, फिर भी इसे सत्य मानते इसलिए हैं कि 'रामचरित्र मानस' के रचयिता और इतने बड़े रामभक्त भला गलत कैसे लिख सकते हैं। तो यह है अन्ध आस्था का प्रमाण।

अभी–अभी साईं पूजा को लेकर शंकरचार्य और साईं भक्तों के बीच बड़ी बहस छिड़ गई जो कि एक बवंडर का रूप लेता जा रही है हालांकि इसका कोई सार्थक परिणाम निकलने वाला नहीं है क्योंकि दोनों ही वेद विरूद्ध हैं, फिर भी हम चाहते हैं कि यह बहस किसी निर्णायक परिणति तक पहुँचे ताकि सत्य का अनावरण हो सके। शंकरचार्य का साईं बाबा पर सबसे बड़ा आरोप यह है कि हिन्दू धर्म में मात्र 24 अवतारों का ही उल्लेख है तो फिर पच्चीसवां अवतार साई बाबा के रूप में कैसे? इस सम्बन्ध में हमारा यह कहना है कि हिन्दू धर्म के शास्त्रों में जब मात्र 24 अवतारों का ही उल्लेख है तो हम यह जानना चाहते हैं कि हिन्दू धर्म के किस शास्त्र में हिन्दू शब्द का उल्लेख है? और अगर नहीं है तो हम हिन्दू क्यों हैं वो क्यों नहीं जिसके नाम पर इस देश का पुरातन नाम आर्यावर्त रहा है।

टी.वी. पर धमाचार्यों की जो बड़ी बहस देखने को मिल रही है, उससे भी पता चलता है कि धर्माचार्यों में भी कितना विघटन है, इसे देखकर यह आश्चर्य होता है किसी भी धर्माचार्य को ईश्वरीय ज्ञान वेद से पूछने की जरूरत नहीं है कि आखिर वेद क्या कहता है जिसे मनुस्मृति ने लिखा है "वेदो ऽ खिलो धर्ममूलम्" अर्थात् वेद ही धर्म का मूल है। तो थोड़ा वेद से पूछकर देखें कि ईश्वर कौन है? उसके क्या गुण हैं, और वह क्या करता है? तो वेद के अनुसार :–

शंकरचार्य का दूसरा आरोप है कि साईं पूजा के नाम पर हिन्दू धर्म को बाँटने का षयडंत्र है। इस सम्बन्ध में हमारा कहना है कि हिन्दू धर्म तो पहले ही से अनेकों टुकड़ों में विभक्त है और जिस एक शब्द की वजह से हिन्दू धर्म अनेकों टुकड़ों में बँटा हुआ है वो शब्द है अवतार। और जब तक यह शब्द अवतार विद्यमान रहेगा तब तक हिन्दुओं में एकता कभी भी स्थापित नहीं होगाँ। और आगे भी अवतार होता रहेगा तथा हिन्दु बँटते रहेंगे। अनुयायियों की तो बात छोड़िए हमारे धर्माचार्य सब भी अनेक टुकड़े में बटे हुए हैं।

टी.वी. पर धमाचार्यों की जो बड़ी बहस देखने को मिल रही है, उससे भी पता चलता है कि धर्माचार्यों में भी कितना विघटन है, इसे देखकर यह आश्चर्य होता है किसी भी धर्माचार्य को ईश्वरीय ज्ञान वेद से पूछने की जरूरत नहीं है कि आखिर वेद क्या कहता है जिसे मनुस्मृति ने लिखा है **"वेदो ऽ खिलो धर्ममूलम्"** अर्थात् वेद ही धर्म का मूल है। तो थोड़ा वेद से पूछकर देखें कि ईश्वर कौन है? उसके क्या गुण हैं, और वह क्या करता है? तो वेद के अनुसार :–

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

2. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य। तो ये सब ईश्वर के गुणा है इसलिए एकमात्र

3. ईश्वर चूंकि अजन्मा है इसलिए उसका मरण भी नहीं होता है। 8 अरब 32 करोड़ वर्ष का सृष्टि काल होता है इतना ही प्रलय काल होता है तो ईश्वर

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

thearyasamaj.org

दूसरों की ईर्ष्या प्रमाण है कि आप सचमुच आनंदित हैं

● सीताराम गुप्ता

कई बार ऐसा होता है कि जब आप अपने किसी मित्र, रिश्तेदार अथवा परिचित से मिलते हैं अथवा मिलने जाते हैं तो आपको अपेक्षित आदर–सत्कार, सम्मान अथवा स्नेह के बदले उपेक्षा और तिरस्कार मिलता है। कल तक जो लोग आपकी तरफ पूरा ध्यान देते थे, आपकी पसंद–नापसंद का ख्याल रखते थे और आपकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे वो ही एकाएक आप में कमियां निकालना तथा आपकी उपेक्षा और तिरस्कार करना शुरु कर देते हैं जबकि आपने ऐसा कोई काम नहीं किया जो उनकी शान के खिलाफ हो। ऐसे में आपका दु:खी, उत्तेजित अथवा परेशान होना स्वाभाविक है।

कल तक जो मित्र आपके सेंस ऑफ ह्यूमर अथवा आपकी ड्रेस सेंस की प्रशंसा करते थकते नहीं थे आज आपको बदतमीज और फूहड़ साबित करने पर तुले हुए हैं तो इसका कोई कारण तो होगा ही और वो कारण है आपके व्यक्तित्व का अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली होना अथवा आपकी प्रसन्नता के स्तर में वृद्धि होना लेकिन उनके इस अप्रत्याशित व्यवहार से आपको दुख तो होगा ही। हो सकता है आपको क्रोध भी आ जाए। लेकिन आपको क्रोध करने अथवा दुखी होने की जरूरत नहीं है। लोग बेशक हमारे गमों में शरीक होते हैं लेकिन हमारी खुशियों के हमेशा खिलाफ भी। तभी तो उर्दू शायर डॉ. नवाज़ देवबंदी साहब कहते हैं :

वो जो मेरे ग़म में शरीक था, जिसे मेरा ग़म भी अज़ीज था,
मैं जो खुश हुआ तो पता चला वो मेरी खुशी के खिलाफ है।

उपेक्षा, अपमान अथवा तिरस्कार की यह स्थिति आपके खुश होने की है क्योंकि इस समय आप वास्तव में प्रसन्नचित अथवा खुशहाल हैं और आपकी प्रसन्नता अथवा खुशहाली कुछ लोगों से देखी नहीं जाती। कुछ लोग हमेशा सुंदर, सुशील, प्रसन्नवदना, खुले ह्रदय और उनमुक्त विचारों वाली महिलाओं में चारित्रिक दोष ढूंढ़ने के प्रयास में ही लगे रहते हैं। वास्तव में जो व्यक्ति जिन दुर्गुणों से युक्त है वह उन्हें दूसरों पर आरोपित करने के प्रयास में लगा रहता है। अब ऐसे ईर्ष्यालू व्यक्तियों से भला एक अच्छे व्यक्ति का क्या मुकाबला लेकिन दूसरे लोगों की ईर्ष्या इस बात का प्रमाण है कि आप सचमुच आनंदित हैं। वे लोग यही चाहते हैं कि आप किसी तरह इस आनंद से वंचित होकर दुखी हों।

यदि आप ईमानदार, अनुशासनप्रिय और नियमों का पालन करने वाले हैं तो बेईमान, अनुशासनहीन तथा नियम तोड़नेवाले लोग अवश्य ही आपको नीचा दिखाने का कोई अवसर अपने हाथ से नहीं जाने देंगे। यदि आप लोगों की सहायता करने वाले, उन्हें अच्छे काम के लिए प्रोत्साहित करने वाले अथवा दो पक्षों का झगड़ा निपटवाने वाले हैं तो दूसरों की टांग खींचने वाले तमाशबीन किस्म के लोग अवश्य ही आपके शत्रु हो जाएंगे और आपको अपमानित करने का कोई भी अवसर हाथ से नहीं जाने देंगे। लेकिन आप सद्गुणों के स्वामी हैं अतः इन अमूल्य जीवन–निधियों और जीवन–मूल्यों को खिसकने मत दीजिए।

लोग दुख में आपके साथ हो सकते हैं लेकिन आपकी खुशी बर्दाश्त नहीं कर सकते, यही सच्चाई है। सभी लोग तो ऐसे नहीं होते लेकिन अधिकांश ऐसे ही होते हैं इसमें संदेह नहीं। लोग तो ऐसे ही होते हैं लेकिन अब आपकी बारी है। आप प्रसन्न रहना चाहते हैं अथवा प्रसन्नता से वंचित होना चाहते हैं। वास्तविकता ये है कि जो लोग दूसरों की समृद्धि देखकर आनंदित होते हैं उन्हें स्वयं समृद्ध होते देर नहीं लगती। विद्वान ही विद्वानों का आदर करते हैं, उनकी संगति से लाभान्वित होते हैं। जो प्रभावशाली व्यक्तित्व से सम्पन्न व्यक्तियों को देखकर उनके गुणों की प्रशंसा करते हैं, उन्हें उचित ठहराते हैं एक दिन स्वयं भी प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी बन जाते हैं।

यदि कोई व्यक्ति विशेष निरंतर किसी व्यक्ति की उपेक्षा कर रहा है अथवा अपमानित करने का मौका तलाश रहा है तो इसमें दो बातें हो सकती हैं। जिस व्यक्ति की उपेक्षा की जा रही है या तो वह है ही उपेक्षा और तिरस्कार के योग्य अन्यथा वह उपेक्षा और तिरस्कार करने वाले व्यक्ति से आगे बढ़ रहा है, उन्नति कर रहा है, इसमें संदेह नहीं। अब यह उन्नति किसी भी प्रकार की हो सकती है। यह आर्थिक उन्नति भी हो सकती है और बौद्धिक उन्नति अथवा विकास भी।

यदि आपके किन्हीं गुणों के कारण आपका व्यक्तित्व विकसित होकर प्रभावशाली हो रहा है, आपमें सद्गुणों की वृद्धि हो रही है तो यह बात भी निश्चित है कि जो लोग इन गुणों से वंचित या कमजोर हैं आपकी उपेक्षा करेंगे ही लेकिन ऐसे में उनको मुंहतोड़ जवाब देना स्वयं के विकास को अवरूद्ध करना है। यद्यपि आपकी उपेक्षा करके आपको कमजोर करने का प्रयास अवश्य किया जा रहा है लेकिन यदि आप किसी भी प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं तो स्वाभाविक है आपकी स्थिति ही कमजोर होगी।

आपकी स्थिति अपेक्षाकृत सुदृढ़ है जिसे किसी प्रकार की चुनौती नहीं दी जा सकती। हां, यदि आपमें कुछ कमियां हैं, आपकी गलत आदतों अथवा दुर्व्यसनों की वजह से आपकी उपेक्षा की जाती है तो आपको अपना पुनर्मूल्यांकन करके स्वयं को दोषमुक्त करने की जरूरत है न कि बुरा मानने अथवा क्रोध करने की। और यदि बेवजह आपकी उपेक्षा की जा रही है तो आपको दुखी नहीं खुश होना चाहिए। आपकी उपेक्षा की वजह है आपकी वर्तमान स्थिति से ईर्ष्या होना।

यदि आप क्रोध करते हैं अथवा उपेक्षा का जवाब उपेक्षा से देते हैं या अन्य किसी भी प्रकार से ईंट का जवाब पत्थर से देने का प्रयास करते हैं तो संभव है आप इसमें सफल हो जाएं लेकिन इस प्रयास में आपमें अनेकानेक अवगुणों का आना तथा आपका अपनी स्थिति से नीचे गिरना भी स्वाभाविक है। यदि आप उपेक्षा अथवा अपमान को सहन कर लेते हैं तो आप में धैर्य, सहिष्णुता और क्षमा जैसे अद्भुत गुणों का अतिरिक्त समावेश भी हो जाता है जो एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। इन गुणों से तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं।

एडी–106–सी, पीतमपुरा,
दिल्ली–110 034

☞ पृष्ठ 04 का शेष

गुरु विरजानन्द जी ...

विद्यार्थी की मेधा एवं स्मरण–शक्ति को परीक्षित करके विद्या का दान देना; आज 150 वर्षों बाद भी बड़ी–बड़ी शिक्षण–संस्थाएँ इसी पद्धति को लेकर चलती हैं। वह दूरदर्शी एवं ज्ञानी महापुरुष थे जिन्होंने अपने मन की आँखों से भारत की भावी शिक्षा–पद्धति को भी देख लिया था। वह स्वयं भी समय का सदुपयोग करते थे तथा व्यर्थ की बातों में ऊर्जा नष्ट नहीं करते थे और अपने विद्यार्थियों में भी इन्हीं नियमों का संचार करते थे।

गुरु विरजानन्द और महर्षि दयानन्द जी का मणिकाँचन जैसा संयोग परिलक्षित होता है। क्योंकि अगर गुरु विरजानन्द अपने शिष्य दयानन्द जी को वेदों का ज्ञान नहीं देते तो स्वामी दयानन्द अधूरे रह जाते और अगर शिष्य दयानन्द अपने गुरु द्वारा दिखाये मार्ग कि "जन–जन में वेदों का प्रचार करों" पर नहीं चलते तो स्वामी विरजानन्द अपूर्ण रह जाते और समाज–कल्याण भी असम्भव हो जाता। इस प्रकार गुरु शिष्य दोनों के संयोग ने ही एक दूसरे को पूर्णता एवं प्रसिद्धि प्रदान की। महर्षि दयानंद जी ने अपने गुरु की दी हुई शिक्षा को सार्थक कर दिया। उन्होंने वैदिक–संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार और समाज–सुधार हेतु अपना सर्वस्व समर्पित कर डाला। गुरु विरजानन्द स्वामी भारतीय संस्कृति के ऐसे महापुरुष थे जिनको आधुनिक काल में वेदों के वास्तविक रक्षक की उपाधि दी जा सकती है। यदि वे स्वामी दयानन्द जैसा योग्य शिष्य इस संसार को समर्पित न करते तो यहाँ वेद का नाम लेने वाला भी कोई न रहता। गुरु विरजानन्द संस्कृत–व्याकरण के सूर्य थे। जब महर्षि दयानन्द जी को इनके देहान्त का समाचार मिला तो उनके मुख से निकला कि आज संस्कृत–व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया। आज इस बात की आवश्यकता है कि हम विद्यार्थियों के माध्यम से, विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के माध्यम से संस्कृत–व्याकरण को सुरक्षित करने की व्यवस्थाओं पर ध्यान दें। वर्तमान समय में फिर से गुरु विरजानन्द जैसे गुरुओं की आवश्यकता है जो महर्षि दयानन्द जैसे शिष्यों को मानवता–हित के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित कर सकें।

संदर्भ :

1. त्रिलोकचन्द आर्य विशारद,गुरु विरजानन्द।
2. श्री चिम्मनलाल वैश्य, सरस्वतीन्द्र जीवन चरित्र।
3. आचार्य जगदीश विद्यार्थी,स्वामी दयानन्द सरस्वती।
4. महर्षि दयानन्द समग्र क्रांति के अग्रदूत,

स्वामी दयानन्द अध्ययन केन्द्र,
बीबीके.डीएवी. कॉलेज फॉर विमेन,
अमृतसर।

thearyasamaj.org

षोडश कला पुरुष

● महात्मा ओम् मुनि

कुछ वर्ष पूर्व रेलगाड़ी से यात्रा करते समय मुझे दो पौराणिक पण्डितों की, षोडश कला अर्थात् सोलह कला सम्पूर्ण पुरुष सम्बन्धी वार्तालाप सुनने अवसर प्राप्त हुआ। उनमें से एक पण्डित कह रहा था कि भगवान् विष्णु के अवतारों में केवल भगवान् श्री कृष्ण ही सोलह कला सम्पूर्ण थे, और भगवान् श्री राम केवल बारह कला सहित भगवान् विष्णु के अवतार थे। मैने जिज्ञासावश यह प्रश्न उनसे पूछ लिया कि पण्डित जी! भगवान् श्री कृष्ण का सोलह कलाधारी और भगवान् श्री राम को केवल बारह कला सम्पन्न आप क्यों बता रहे हैं, जबकि दोनों को ही आप भगवान् विष्णु का अवतार मानते हैं।

तब उस पण्डित ने अपने पौराणिक ज्ञानानुसार बताया कि भगवान् श्री कृष्ण चन्द्रवंशी थे, इसलिए वे सोलह कला सम्पन्न पुरुष कहलाते हैं, क्योंकि चन्द्रमा की सोलह कलायें होती हैं। भगवान् श्री राम सूर्य वंशी होने के कारण बारह कलाधारी हैं, संवत्सर के बारह मास सूर्य की बारह कलाएं हैं। इसके साथ उन्होंने एक बात ओर सुनाई कि सोलह कलापूर्ण भगवान् विष्णु के अवतार के पास सुदर्शन नामक दिव्यास्त्र होता है, जो भगवान् श्री कृष्ण के पास था किन्तु श्री राम के पास नहीं था। मेरे मस्तिक में कुछ प्रश्न उमड़–घुमड़ रहे थे कि सूर्य और चन्द्रमा तो जड़ पदार्थ हैं, भला इनसे कोई मानव वंश कैसे चल सकता है? और भी कई प्रश्न किन्तु गन्तव्य स्टेशन आने के कारण मुझे गाड़ी से उतरना पड़ा और यह षोडश कला सम्बन्धी वार्तालाप भी वहीं छूट गया।

कुछ समय पश्चात् जब मैं एक दिन प्रश्नोपनिषद् का स्वाध्याय कर रहा था तब मुझे इस षोडश कला का रहस्य ज्ञात हुआ! पौराणिक जगत् में तो न जाने ऐसी कितनी अज्ञान व अविद्या से भरी कथायें प्रचलित हैं। प्रश्नोपनिषद् में एक प्रसंग के अनुसार महर्षि पिप्पलाद के पास छः जिज्ञासु ब्रह्मचारी अपनी–अपनी शंकाओं के समाधान हेतु पहुँचते हैं उनमें से एक जिज्ञासु भारद्वाज गोत्री ब्रह्मचारी सुकेश ने महर्षि पिप्पलाद से पूछा कि– 'हे भगवन्! वह षोडश कला पुरुष कौनसा है?'

तब महर्षि पिप्पलाद ने कहा कि हे प्रिय शिष्य! वह पुरुष कहीं दूर नहीं रहता, वह शरीर के भीतर ही है, जिसके भीतर यह षोडश कलाएं उत्पन्न होती हैं। ऋषि के अनुसार पुरुष से अभिप्राय जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही हैं। क्योंकि जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही इस शरीर में रहते हैं। परमात्मा तो इन षोडश कलाओं को उत्पन्न करता है और जीवात्मा इन कलाओं से काम लेता है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि ये षोडश कलायें हैं कौन–कौन सी और इनकी गणना किस कला से प्रारम्भ होती है अर्थात् इनमें प्रथम कला कौनसी है?

इसके समाधान के लिए ऋषि ने बताया कि जिस कला के शरीर से बाहर निकलने पर जीवात्मा को भी विवश होकर शरीर छोड़ना पड़े और मनुष्य की मृत्यु हो जाये, वह प्रथम कला है। अब परीक्षण प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम नेत्रों ने शरीर को छोड़ा, तब शरीर ऐसे ही चलता रहा जैसे अन्धे व्यक्ति का जीवन होता है। आंखों के बाद श्रवण शक्ति ने शरीर को त्याग तो बहरों की तरह जीवन बिताया किन्तु शरीर में जीवन चलता रहा। इसी प्रकार बारी–बारी सभी ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियाँ शरीर से अलग होती रही और शरीर में उनसे सम्बन्धित दोष आते रहे, किन्तु शरीर में जीवन चलता रहा। अन्त में जब प्राण ने शरीर से निकलने का प्रयत्न किया तो सबके खूँटे उखड़ने लगे और जीवात्मा सहित सभी इन्द्रियाँ निढाल और बेबस होने लगी। क्योंकि प्राण निकलने से शरीर की मृत्यु निश्चित है।

अतः सर्वव्यापक परमात्मा ने सर्वप्रथम क्रिया के लिए प्रथम कला के रूप में **प्राणों** को उत्पन्न किया, क्योंकि क्रिया के बिना कोई वस्तु उन्पन्न नहीं हो सकती फिर दुसरी कला प्राण से **श्रद्धा** उत्पन्न हुई, श्रद्धा से **आकाश** तीसरी, आकाश से **वायु** चौथी, वायु से **अग्नि** पांचवीं, अग्नि से **जल** छठी और जल से **पृथिवी** सातवीं कला के रूप में उत्पन्न हुई। इन पाँच महाभूतों के पश्चात् इनके गुणों को धारण करने वाली **इन्द्रियाँ** और इनको नियम में चलाने वाला **मन** उत्पन्न हुआ। इस प्रकार **प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि, इन्द्रियाँ** और **मन** ये नौ कलायें हुई।

अब आगे मन को शक्ति प्रदान करने के लिए **अन्न** दसवीं कला और अन्न से **वीर्य** ग्यारहवीं कला उत्पन्न हुई। वीर्य से शरीर की रचना होने के पश्चात् मनुष्य शारीरिक व मानसिक तप करता है। अतः **तप** बारहवीं कला हुई। शारीरिक तप से उत्पन्न होने वाली चौहदवीं कला को विचार अर्थात् **मन्त्र** कहा जाता है। कर्म और मन्त्र के अतिरिक्त **नाम** व **रूप** दो कलाएं हैं। रूप को **लोक** कहा जाता है, जो पन्द्रहवीं कला है और **नाम** सोलहवीं कला है।

इस प्रकार महर्षि पिप्पलाद कहतें है कि जिस प्रकार रथ के पहिये की नाभि में आरे लगे होते हैं, इसी प्रकार जिस पुरुष में सब कलायें विद्यमान हैं, जिसके बिना कोई कला रह नहीं सकती, उस जानने योग्य परमात्मा को जानो और उसे जानकर ही मनुष्य मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है।

इति ओ३म् शम्

त्यागी कुटीर, ग्रा.डा.– शेखपुरा
तह. हाँसी, जिला– हिसार (हरियाणा)

☞ *पृष्ठ 05 का शेष*

आस्था के दलदल में

वो है जो सृष्टिकाल के पहले भी विद्यमान था और प्रलयकाल के बाद भी विद्यमान रहेगा। अवतार तो हम सभी का होता है, ईश्वर का नहीं। वह आने जाने वालों में नहीं है क्योंकि वह तो कर्मकाल दाता है, कर्मफल भोक्ता नहीं। ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन अनादि सत्तायें हैं। अवतार महान् आत्माओं का होता है, दिव्य आत्माओं का होता है परम आत्मा का नहीं।

ईश्वर कभी मरता नहीं, क्यों लेवे अवतार।
जीव शरीर धारण करें, अपने कर्मानुसार।।

दुर्भाग्य है हिन्दू समाज का जिसने वेदों को लाल कपड़े में बाँध कर रख दिया है और सिर्फ नाम भर लेते हैं। हमारे धर्माचार्य भी वेदों से इतना दूर क्यों हैं? इसके दो कारण हैं प्रथम तो यह कि वेदों तक उनकी पहुँच नहीं है और दूसरा यह है कि अगर वेदों तक उनकी पहुँच भी है तो उनमें वेदों के पन्ने को पलटने का साहस नहीं क्योंकि इसके बाद ढोंग, पाखण्ड, गुरुडम, आडम्बर एवं अन्धविश्वास को फैलाया नहीं जा सकता, उनका धर्म का व्यापार ही ठप्प पड़ जायगा। वेदों के इस मंत्र का किसी के पास क्या जवाब है– न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः" अर्थात् ईश्वर की कोई मूर्ति नहीं हो सकता क्योंकि उस महान यश वाले ईश्वर का कोई आकार नहीं है। इसलिए इन धर्माचार्यों की बहस ही निराधार एवं वेद विरूद्ध है।

निःसंदेह साईं बाबा एक उच्च कोटि के साधक थे जो सच्चे अर्थों में ईश्वर के भक्त थे। उनका कहना था कि सबका मालिक एक है। तो क्या यह उन्होंने अपने बारे में कहा था? उनके भक्तजन उनकी भक्ति में क्यों नहीं लगते जिनके बारे में उन्होंने कहा था। हालाँकि यह कोई नई बात नहीं, वेद ने भी बहुत पहले ही कहा है कि **"एको विश्वस्य भुवनस्य राजा"** अर्थात् सम्पूर्ण भूमंडल का स्वामी एक है। तो साईं बाबा के पहले भी ईश्वर था और साईं बाबा के बाद भी ईश्वर रहेगा। अतः उनकी उपासना में सब लगे।

अगर धर्माचार्यों को बहस ही करनी है तो सारे धर्माचार्य मिल बैठकर इन समस्याओं का कारण और निराकरण खोजें कि आखिर क्यों?

1. दुनिया में सारे मुसलमान लगभग एक हैं, सारे ईसाई एक हैं, सारे बौद्ध एक है सारे पारसी एक हैं तो फिर हिन्दू एक क्यों नहीं? यहां तक कि उनके मस्जिद एक है, गिरिजा घर एक है, बौद्ध मठ एक है तो हमारे मन्दिर एक क्यों नहीं।

2. सारी दुनियां को एकेश्वरवाद का संदेश देने वाली आर्यजाति आज खुद क्यों बहुदेवतावाद के दलदल में फँस गई है।

3. कभी दुनियां में केवल आर्य धर्म था और आर्य धर्म से ही सभी उत्पन्न हुए फिर आज हम क्यों विश्व समुदाय के सामने अल्पसंख्यक हैं।

4. पूरी दुनिया में केवल सनातन वैदिक धर्म ही धर्म है बाकी सभी मत पंथ एवं सम्प्रदाय हैं क्योंकि उन मतों का कोई न कोई प्रवर्तक है। पर क्या कोई बता सकता है कि आर्यधर्म के प्रणेता कौन है? फिर भी हमारी स्थिति ऐसी कैसे बन गई कि हम विनाश के कगार पर आ गए।

5. आज भारत दुनियां में गो माँस का निर्यातक एक प्रमुख देश बन गया है जिस वजह से अमृत समान दूध देने वाली गायों की हत्या प्रतिवर्ष एक करोड़ की हो गई है।

6. आज पूरे देश में हत्या, लूट, बलात्कार और अपहरण का बाजार गर्म है और माँस और शराब का भयंकर सेवन हो रहा है, जिस वजह से पूरे समाज में अपराध का बोलबाला है।

7. आज इस देश में बेजान नारी मूर्तियों की तो पूजा हो रही है पर जीवन्त नारी को भोग की वस्तु के अलावा कुछ नहीं समझा जाता।

अतः हम सभी धर्माचार्यों से मार्मिक अपील करते हैं कि मनुष्य को मनुष्य ही रहने दीजिए उसे भगवान मत बनाइये और समाज को ढोंग, आडम्बर, पाखण्ड और अंधविश्वास में मत ढकेलिये। आप सब नैतिक शिक्षा और चरित्र निर्माण के कार्य को अपने हाथ में लेकर देश को सबल बनावें।

आर्य समाज, मुजफ्फरपुर
(मो.) 09835206688

thearyasamaj.org

विद्युत्–शवदाहगृह के प्रयोग पर प्रतिक्रियाएं

● पं वेद प्रकाश शास्त्री

'आर्य जगत'– 15 जून, 2014 पृष्ठ–10 पर प्रकाशित "विद्युत् शवदाहक" के प्रयोग पर श्री मुख्यार सिंह जी श्री मुक्तसर साहिब पंजाब का फोन पर कहना था – " शास्त्री जी, विद्युत् शवदाहक के प्रयोग करने पर वेद मन्त्रों से आहुतियों का क्या बनेगा?" श्री सुभाष जी दिल्ली ने भी यही प्रश्न किया है।

श्री अर्जुन देव जी चड्ढा जिला प्रधान आर्य समाज कोटा (राजस्थान) ने फोन पर प्रश्न किया – "शास्त्री जी, आपका कथन तो ठीक है परन्तु वेदमन्त्रों से आहुतियों का क्या होगा? मन्त्र तो पूरे बोले नहीं जा सकते?"

इन दोनों सज्जनों के उत्तर में बस इतना ही कहा जो सकता है– "यद्यपि सारे मन्त्र नहीं बोले जा सकते तथापि पहले हवन सामग्री में चन्दन चूरा, गुग्गल, गरी के टुकड़े एवं अन्य सुगन्धित पदार्थ मिष्ट सहित अधिक से अधिक घी मिला कर शव के सारे शरीर पर डाल दें, इससे घी भी सभी जगह फैल जायगा। अन्त में–

ओ३म् वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तँ शरीम्।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतँ स्मरो३म् स्वाहा।।यजु. 40/15

इस मन्त्र का पाठ निरन्तर करते रहें, जब तक कि शरीर भस्म न हो जाय। मेरे विचार से इतना ही पर्याप्त है।

(मन्त्रार्थ – प्राण वायु शरीर से निकल जाने पर अमर हो जाता है और यह पार्थिव शरीर भस्म होने योग्य है। अतः हे कर्मशील जीव! तू ओ३म् का स्मरण कर। अपने किए हुए शुभ–अशुभ कर्मों का स्मरण कर। अपने सामर्थ्य एवं स्वरूप का स्मरण कर। संसार की यथार्थता को पहचान।

हे प्रभो! यह आपकी अमानत आपको ही समर्पित है। तेरा तुझको सौंपते, क्या लागे है मोर।।

श्री चड्ढा जी ने एक अन्य महत्वपूर्ण बात की ओर सभी का ध्यान आकर्षित किया है–

"विद्युत्–शवदाहगृह का प्रयोग करने से लकड़ियों की बचत होगी। पेड़ कम कटेंगे, उनकी रक्षा होगी और पर्यावरण शुद्ध रहेगा। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई ने पर्यावरण को असन्तुलित कर दिया है। सामान्यतः एक संस्कार पर एक पेड़ लग जाता है। अब आप स्वयं अनुमान लगाएं कि कितने पेड़ों की रक्षा होगी, पेड़ बचेंगे तो कितना लाभ होगा? और कटेंगे तो कितनी बड़ी हानि होगी? 80 प्रतिशत से भी अधिक शवों को जलाने में लकड़ियों का ही प्रयोग किया जाता है। अतः–

पेड़ बचाएं, मत कटवाएं, पर्यावरण शुद्ध बनाएं।
विद्युत्–शवदाहगृह में शव अवश्य जलाएं।।"

श्री चड्ढा जी का यह भी कथन है–

"आपने फाजिल्का में लकड़ियों पर व्यय दो हज़ार रुपये लिखा है परन्तु यहाँ कोटा में ढाई–तीन हज़ार रुपये खर्च होते हैं।"

सम्भवतः अन्य बड़े शहरों में लकड़ियां और भी मंहगी होंगी। वहां के खर्च का अनुमान स्वयं लगाएं।

एक बात और, जितनी लावारिस लाशें उपलब्ध होती हैं, यदि उन्हें विद्युत् शवदाहगृह में जलाया जाय तो सरकार एवं अन्त्येष्टि संस्कार कराने वाली संस्थाओं के लिए भी अत्यधिक सुविधा रहेगी। अतः सरकार एवं समाज सेवी संस्थाओं को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

दुर्भाग्यवश सामूहिक, दुर्घटनाओं में जिनके परिजन नहीं मिलते, उन्हें भी विद्युत् शवदाहगृह में संस्कार हेतु भेजना चाहिए। उन तीर्थ स्थानों पर, जहां दुर्घटनाओं की सम्भावना अधिक रहती है, वहां पर विद्युत् शवदागृह अवश्य होने चाहिएँ। हरिद्वार, केदारनाथ, प्रयाग, वाराणसी, अयोध्या, उज्जैन सदृश स्थानों पर यह सुविधा अवश्य उपलब्ध होनी चाहिए। गतवर्षीय केदारनाथ की घटना तो यही सन्देश देती है। जहां लकड़ियों की अनुपलब्धता से कितनी बड़ी समस्या खड़ी हो गई थी। सड़े, गले, दुर्घटनाग्रस्त दुर्गन्ध युक्त शवों के संस्कार विद्युत्–शवदाहगृह में होने से शव में विद्यमान रोगाणु, विषाणु अवश्य नष्ट हो जाएंगे, दुर्गन्ध भी नहीं होगी। जबकि श्मशान की चिताओं में उतनी समुचित व्यवस्था न होने से इसकी संभावना निरन्तर बनी रहती है। क्योंकि इन विषम परिस्थितियों में संस्कार हेतु लकड़ियां एवं अन्य सामान की समुचित उपलब्धता संदिग्ध रहती है। वर्षा के समय प्रायः लकड़ियां गीली रहती हैं। अतः संस्कार यथा तथा ही होता है। पूर्णतः सन्तोषंजनक नहीं। इसके विपरीत विद्युत्–शवदाहगृह में विहनबाधारहित सुविधापूर्वक संस्कार सम्पन्न हो सकता है।

सुविधाजनक होने पर भी अधिकांशतः लोग मानसिकरूप से 'विद्युत्–शवदाह' हेतु उद्यत नहीं हो पाते। अतः विद्वानों, उपदेशकों, कथावाचकों, धार्मिक–सामाजिक संस्थाओं को आगे आकर अपने प्रवचनों, विज्ञापनों के माध्यम से श्रोताओं, अनुयायियों एवं जनसाधारण को भी प्रेरित, प्रोत्साहित करना चाहिए। समाचार पत्र, दूरदर्शन को भी जनजागरण में सहयोग करना चाहिए। सरकार भी विज्ञापनों द्वारा अपनी प्रदत्त सुविधाओं का परिचय दे सकती है। जहां विद्युत्–शवदाह गृह हैं, हो सकता है अत्यल्प आय वाले वर्ग को इस सम्बन्ध में जानकारी ही न हो। खर्च अधिक आने से कतराते हों।

श्री देवराज आर्यमित्र दिल्ली से अपने पत्र में लिखते हैं– "भाई साहब, विद्युत् शवदाह के परामर्श से हम सहमत नहीं हैं। वैदिक संस्कृति के अनुसार अन्त्येष्टि की सर्वश्रेष्ठ पद्धति चिता बना कर अग्नि प्रज्जवलित करो। शवदाह के प्रदूषण को दूर करने के लिए घृत, सामग्री तथा अन्य सुगन्धित पदार्थ डालो। यह सद्गति के लिए उत्तम है।

एक बात से सहमत हूँ। यदि शवदाह करने के लिए आर्थिक अभाव है तो बेशक शवदाहगृह ले जाओ।"

"विद्युत्–शवदाहगृह का प्रयोग करने से लकड़ियों की बचत होगी। पेड़ कम कटेंगे, उनकी रक्षा होगी और पर्यावरण शुद्ध रहेगा। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई ने पर्यावरण को असन्तुलित कर दिया है। सामान्यतः एक संस्कार पर एक पेड़ लग जाता है। अब आप स्वयं अनुमान लगाएं कि कितने पेड़ों की रक्षा होगी, पेड़ बचेंगे तो कितना लाभ होगा? और कटेंगे तो कितनी बड़ी हानि होगी? 80 प्रतिशत से भी अधिक शवों को जलाने में लकड़ियों का ही प्रयोग किया जाता है। अतः–

विचार स्वातन्त्र्य हेतु सभी को अधिकार है। सहमति असहमति भी स्वयं पर निर्भर है। किसी एक को बात जंचती है तो दूसरे को नहीं। ठीक ही कहा है– **मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना तुण्डे तुण्डे सरस्वती।**

इस पर माननीय आर्यमित्र जी से इतना ही निवेदन है कि पर्यावरण शुद्धि हेतु सभी यज्ञीय पदार्थ शव पर रखे जायेंगे। जिनका पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, केवल मन्त्रोच्चारण रह जाता है जिसका समाधान बताया जा चुका है। हां सम्पूर्ण मन्त्र नहीं बोले जा सकते। अतः हमें संक्षिप्तीकरण पर ही सन्तोष करना पड़ेगा। हम महर्षि की समस्त बातों को पूर्णरूपेण व्यावहारिक रूप नहीं दे सकते।

महर्षि दयानन्द द्वारा निर्धारित अन्त्येष्टि सामग्री पर ही विचार करें–

"जितना उसके शरीर का भार हो, उतना घृत, यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक लेवें। और जो महादरिद्र भिक्षुक हो कि जिसके पास कुछ भी नहीं है, उसको कोई श्रीमान् वा पंच बन के आधा मन से कम घी न देवें। और श्रीमान् लोग शरीर के बराबर तौल के चन्दन, सेर भर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर, एक–एक मन घी के साथ सेर–सेर भर अगर, तगर और घृत में चन्दन का चूरा भी यथाशक्ति डाल कपूर, पलाश आदि के पूर्ण काष्ठ, शरीर के भार से दूनी सामग्री श्मशान में पहुंचावें।"

(संस्कार विधि अन्त्येष्टि संस्कार)

समीक्षा – क्या कोई आर्य इतना घी, सामग्री, चन्दन, अगर, तगर, काष्ठ प्रयोग करता है अथवा किया है? यदि नहीं, तो यह भी तो नियम का उल्लंघन ही है। फिर इस पर कोई आपत्ति क्यों नहीं करता? इसका कोई अपवाद मिलना भी असम्भव है।

"अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न होने के बाद घर पर स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण मन्त्रों के पाठ के पश्चात् ईश्वर–स्तुतिप्रार्थना, मन्त्रोच्चारण करके स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण के मन्त्रों से मन्त्रान्त में स्वाहा लगा कर आहुति दें। यदि उस दिन रात्रि हो जाय तो थोड़ी सी देकर दूसरे दिन प्रातः काल स्वस्विवाचन, शान्तिकरण की आहुतियां दें।" (संस्कार वि. अन्त्ये.)

समीक्षा– अब सभी आर्यजन आत्ममन्थन करें कि क्या इन सभी मन्त्रों से आहुतियां देते हैं?

प्रायः प्रचलित परम्परा के अनुसार अस्थिचयन के पश्चात् ही यज्ञ करते हैं, वह भी दैनिक। कई लोग बृहद् हवन भी कर लेते हैं। परन्तु महर्षि के अनुसार पहले स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण मन्त्रों का पाठ तत्पश्चात् इन्हीं मन्त्रों से ही आहुतियां नहीं देते।

स्वयं विचारें, क्या यहां अपूर्णता नहीं रह जाती? यदि हां, तो फिर विद्युत्–शवदाहगृह में शव जलाने के समय मन्त्र रह भी गए तो इस पर आपत्ति नहीं होनी चाहिए। घी, सामग्री आदि सुगन्धित पदार्थ समर्पित करने से शवदाह तो विधिवत् हो जाता है। वायु प्रदूषण भी नहीं होता। फिर भला और क्या चाहिए?

मन्त्र छोड़ने के दृष्टिगत एक बात और, विवाह संस्कार में देखिए। विधि दो भागों में विभक्त है। परन्तु आज तो विवाह घण्टे भर से भी कम समय में समाप्त करने के लिए कहा जाता है। अब आप स्वयं सोचें, कितने मन्त्रों एवं विधियों में कटौती हो जाती है? फिर भी हमें खेद नहीं होता अपितु हम प्रसन्न होते हैं। चलो, जल्दी कार्य सम्पन्न हो गया।

सज्जनवृन्द! संसार परिवर्तनशील है। आज का युग समन्वय का युग है। यदि मन्त्र न भी बोले जा सकें तो भी विद्युत्–शवदाह विधि सहर्ष ग्राह्य एवं स्वीकार्य होनी चाहिए। अस्तु।

4–ई, कैलाश नगर, फाजिलका (पंजाब)
09463428299

thearyasamaj.org

श्री कृष्ण की राजनीति और वर्तमान उग्रवाद

● डा. अशोक आर्य

योगीराज कृष्ण के जन्म से पूर्व लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व ही इस देश की अधोगति आरम्भ हो गई थी। योगीराज ने अपनी नीति के प्रयोग से इस अधोपतन को समाप्त करने का भरपूर प्रयास किया। यह उनकी राजनीति का ही परिणाम था कि जो भारत देश महाभारत काल में ही विदेशियों का गुलाम होने की अवस्था में था, वह देश चार हजार वर्ष बाद में गुलाम हुआ। श्री कृष्ण जी के पश्चात् भी हमारे जिस राजनेता ने भी उनकी नीति का अनुसरण किया, इतिहास में उसने स्थाई स्थान पाया।

भारतीय इतिहास में महाभारत के पश्चात् हम चाणक्य को प्रथम राजनेता के रूप में पाते हैं जिस ने कृष्ण जी के आदर्श राज नियमों को अपनाया तथा चन्द्रगुप्त को आगे रखकर भारत की सीमाओं को मजबूत किया। फिर शिवाजी महाराज ने उसी नीति को अपनाते हुए दक्षिण भारत तथा बन्दा वैरागी, हरिसिंह नलवा,महाराज रणजीत सिंह आदि ने उत्तर भारत में इसी राजनीति का अवलम्बन किया। इसी का ही परिणाम था कि यह महापुरूष सदा अपने सभी प्रकार के अभियानों मे सफल हुए। भारत स्वाधीन हुआ। उस समय देश अति विकट अवस्था में था। इस अवस्था में देश पुनः बंट कर नष्ट हो जाता यदि कृष्ण नीति को अपना कर सरदार पटेल देसी रियासतों की लगाम न कसते।

इस प्रकार के कृष्ण को यदि महर्षि दयानन्द ने अपने शब्दों में इस प्रकार कहा कि "कृष्ण ने जन्म से मरण पर्यन्त कोई पाप नहीं किया" तो कोई अतिश्योक्ति नहीं की। महाभारत का वह काल था, जिस में ब्राह्मण अपनी मर्यादाओं को भूल रहे थे। जन्म को जाति का आधार बनाने लगे थे। तभी तो एकलव्य व कर्ण को समान शिक्षा देने में बाधा खडी की गई। यह वह समय था जब क्षत्रियों की मर्यादाएं समाप्त हो रहीं थीं। तभी तो श्री कृष्ण ने वैदिक मर्यादाओं को स्थापित करने का प्रयास किया। देश कौरव व पाण्डव दो दलों में बंटा था। राष्ट्रीय भावना के लोग पाण्डवों के साथ थे तथा विदेशी शक्तियां कौरवों के साथ थीं। तभी तो योगीराज ने पाण्डवों का पक्ष लेकर न केवल देश को सुरक्षित ही नहीं किया अपितु खण्डित देश को एक केन्द्रीय संगठन भी दिया। इस संगठन की कमान युधिष्ठिर को दी।

श्री कृष्ण जी की राजनीतिक सूझ इसी से प्रकट होती है कि वह राजनीति में दया के स्थान पर जैसे को तैसा के मार्ग पर चलने वाले थे। यही वह कारण था कि जब कौरव सेना ने सभी लड़ाई के नियमों का उल्लंघन करते हुए बालक वीर अभिमन्यु का वध कर दिया तो कृष्ण ने उनके साथ वैसा ही व्यवहार करने का निर्देश देकर कुछ भी तो गलत नहीं किया। इसी नीति के माध्यम से ही तो कर्ण, भीष्म पितामह, अश्वथामा, कालयवन आदि यहां तक कि अन्त मे दुर्योधन को भी मार कर या पराजित कर अपनी अद्‌भुत राजनीति का परिचय दिया। यह ठीक भी है। राजनीति में पराजय का नाम मृत्यु है तथा जय का नाम है स्वर्गिक आनन्द। जीतना ही धर्म है और हारना अधर्म। यही कारण है कि जब सन्धि का सन्देश लेकर श्री कृष्ण कौरव दरबार में गए तो पहले से ही ऐसी तैयारी कर गए थे कि उनके साथ छल न होने पावे। स्वयं तो कौरव दरबार में खडे थे किन्तु उनके रक्षकों ने पूरे क्षेत्र को घेर रखा था। जब कृष्ण जी के ओजस्वी विचारों ने कौरव दल के सभी लोग उनके पक्ष में आ गए तो दुर्योधन ने उन्हें हिरासत में लेने की सोची किन्तु दूरदर्शी कृष्ण जी की पहले से ही की हुई तैयारी यहां काम आई। धूर्त दुर्योधन उनका बाल भी बांका न कर सका।

यह कृष्ण जी की नीतियों का ही परिणाम था कि यह देश, जो उस समय विदेशियों की गुलामी झेलने की अवस्था में पहुंच चुका था, को आपने सुढृढ कर न केवल इससे बचाया अपितु इसके लगभग चार हजार वर्ष बाद भी यह देश बचा ही रहा। आज जिस प्रकार हमारा भारत देश विदेशी उग्रवाद की चपेट में फंसा है ठीक इसी प्रकार मर्यादा पुरूषोत्तम राम के शासन से पूर्व तथा युधिष्ठिर के शासन से पूर्व भी उग्रवाद व विदेशी लोगों के कोप से ग्रसित था। राम व कृष्ण दो ऐसे महान् नेता व राजनीति कार इस देश को प्राप्त हुए. जिन की सफल राजनीति ने उस समय के विदेशी उग्रवाद को समूल नष्ट कर एक ठोस व मजबूत केन्द्रीय सत्ता इस देश में स्थापित कर इस देश को ऐसी सुढृढ पृष्ठभूमि दी कि फिर हजारों वर्षों तक उग्रवाद यहां अपना फन न उठा सका। आज ठीक वैसी ही अवस्था से देश निकल रहा है। प्रतिदिन यहां न केवल विदेशियों की घुडकियां मिल रही हैं। इसके साथ ही साथ प्रतिदिन उग्रवादियों द्वावारा किये जा रहे बम धमाकों, गोलियों आदि के कारण हजारों भारतीय मारे जा रहे हैं। हमारे राजनेता अपनी दल गत राजनीति में इतने उलझे हुए हैं कि देश के इस महान् संकट के समय भी एक होकर लड़ने के स्थान पर एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में देश का अवनति की ओर जाना निश्चित है। इसी का ही परिणाम है कि कहीं अतिवृष्टि हो रही है और कहीं अनावृष्टि, कहीं तो किसी के गोदाम भरे हुए हैं तो किसी को दो जून का भोजन भी नहीं मिल रहा। सभी स्वार्थ के वशीभूत हो रहे हैं।

आज आवश्यकता ही नहीं बल्कि इस विदेशी प्रायोजित आतंकवाद पर काबू पाकर देश को ठोस आधार देने की है। यह तभी सम्भव होगा जब हमारे राजनेता श्री कृष्ण जी की राजनीति को न केवल समझेंगे अपितु इसे व्यवहार में लायेंगे। यही ही एकमात्र हल है इस उग्रवाद के मुंह से देश को निकाल कर पुनः परम वैभव पर लाने का। आर्य समाज ही एकमात्र संस्था है जो यह मार्ग वर्तमान स्वार्थी राजनेताओं को दिखा सकता है। अतः आर्य समाजियों को मजबूती से इस राजनीति को अपनाना चाहिये।

आज आवश्यकता ही नहीं बल्कि इस विदेशी प्रायोजित आतंकवाद पर काबू पाकर देश को ठोस आधार देने की है। यह तभी सम्भव होगा जब हमारे राजनेता श्री कृष्ण जी की राजनीति को न केवल समझेंगे अपितु इसे व्यवहार में लायेंगे। यही ही एकमात्र हल है इस उग्रवाद के मुंह से देश को निकाल कर पुनः परम वैभव पर लाने का। आर्य समाज ही एकमात्र संस्था है जो यह मार्ग वर्तमान स्वार्थी राजनेताओं को दिखा सकता है। अतः आर्य समाजियों को मजबूती से इस राजनीति को अपनाना चाहिये।

105 शिप्रा अपार्टमएन्ट, कौरहाम्बी 201010
गाजियाबाद (भारत)

राष्ट्र के विकास में महिलाओं की महत्वपूर्ण भागीदारी

आर्य समाज जिला सभा कोटा के तत्वावधान में राजकीय उच्च कन्या माध्यमिक विद्यालय तलवंडी में छात्राओं को पाठ्य सामग्री वितरित की गई। उपलब्ध सामग्री में स्कूल बैग, कोचिंग बैग, कापियां, पेन, पेन्सिल, पेन्सिल बॉक्स, मौजे आदि वितरित किए गये।

कार्यक्रम में आर्य समाज जिला सभा कोटा के प्रधान अर्जुनदेव चड्ढा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि देश कि देश का विकास तभी सम्भव है जब प्रत्येक व्यक्ति समाज में अपना योगदान दे। उन्होंने कहा कि इस कार्य में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि महिला की संतान को संस्कारित करती है।

प्रधानाध्यापिका श्रीमती निर्मला आर्या ने पुष्प गुच्छ भेंट कर अतिथियों का स्वागत किया। उन्होंने कहा कि महर्षि दयानन्द ने महिलाओं का सम्मान बढ़ाया तथा आर्य समाज की स्थापना कर समाज सुधार को एक नई दिशा दी।

जिला सभा के उप प्रधान श्रीचंद गुप्ता ने अपने संबोधन में कहा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने समाज में फैली कुरीतियों व अंधविश्वासों को दूर करने की प्रेरणा समाज को दी।

आर्य समाज विज्ञान नगर के प्रधान जे.एस.दुबे ने एक दोहे के माध्यम की समाजसेवा का संकल्प दोहराया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए आर्य विद्वान रामप्रसाद याज्ञिक ने कहा कि बेटा बेटी एक समान हैं, बेटों को प्यार करो, बेटियों का सम्मान करो तथा उन्हें अच्छी शिक्षा दिलाकर सुयोग्य व आत्मनिर्भर बनावें।

thearyasamaj.org

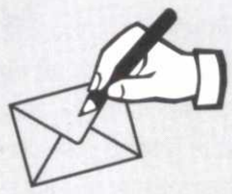

पत्र/कविता

दोहे

तेरे मेरे बीच में, माया की दीवार।
माया बंधन तोड़कर, बाधा कर लूं पार।।

खुद की खातिर सब जियें, जीना नहिं कहलाय।
औरों की खातिर जियें, वह जीना कहलाय।।

मिलती तुमसे प्रेरणा, पाता हूं मैं ज्ञान।
वरना बड़ा अबोध हूं, बहुत बड़ा नादान।।

मानव का जीवन मिला, कर लो ऐसे काम।
मर जान के बाद भी, काम बनावें नाम।।

सच को ही सहनी पड़े, सदा झूठ की मार।
मन में हो निश्चय कड़ा, जीते सच हर बार।।

पाना गर कुछ चाहते सपने लो भरपूर।
उसकी हो इक योजना, संशय कर लो दूर।।

भूल भुलैया में फंसे, नहिं था मंजिल भान।
रस्ता उनको मिल गया, जिनको मंजिल ज्ञान।।

भले बुरे में भेद जो, विवेक से कर पाय।
जाने फिर जो मान ले, वह सुजान कहलाय।।

नियम जानता ज्ञान के, वैज्ञानिक कहलाय।
जान जीवन के नियम, वह, सुजान बन जाय।।

संस्कार मां बाप दें, वह घर का इतिहास।
बच्चे जो भी सीखते, वह भविष्य की आस।।

नरेन्द्र आहूजा विवेक
602ए जी.–53, सैक्टर–20,
पंचकुला (हरियाणा)

शंकराचार्य और साईं श्रद्धालुओं का युद्ध

अभी कुछ महीने पहले मैंने अपने एक सम्पादकीय लेख––**"वेदों के अनुरूप ही हिन्दु धर्म का सम्मान सम्भव है"** में लिखा था कि जो हम हिन्दु धर्म का बुरा हाल देख रहे हैं उसके लिये हम खुद जिम्मेवार है। हाल ही में, शंकराचार्य और साईं श्रद्धालुओं का जो वाक्युद्ध देखने को मिल रहा है यह उसी का ही एक उदाहरण है।

बजाये इसके कि वेदों के अनुसार हमं एक ही ईश्वर जो कि निराकार, अजन्मा, **(जिसका न कोई आकार है न–ही जन्म होता है)** माने , हम ने अपनी अपनी पसन्द के अनुसार लाखों भगवान बना लिये हैं। यही नहीं हर 40–50 साल में परिवर्तन भी होता है और उनके स्थान उपर नीचे भी होते है। कहने का भाव यह है कि जो भगवान आज लोक प्रिय है हो सकता है कुछ सालों बाद उसका स्थान और कोई नया भगवान ले ले या उसका नाम ही न हो। यानी कि जो ईश्वर अनादि है, इस सृष्टि और हम प्राणियों को बनाने वाला है, उस का जीवन हम ने 50–60 साल का बना दिया है। यह क्रिया तो मैंने अपने जीवन मे ही देखी है। 1960–70 में पुटापर्थी वाले साईं बाबा का एक दम बहुत नाम हुआ, देखते हमारे बहुत सारे परिचित ने अपने घर में बनाये मन्दिरो में बाबा की फोटो मूर्तियों के बीच में कर दी और और राम और कृष्ण की मूर्तियां उनके आस पास कर दी। आज 50 साल बाद दृश्य कुछ अलग ही है। उन बाबा जी का स्थान किसी दूसरे बाबा ने ले लिया है। शंकराचार्य और साईं श्रद्धालुओं का जो वाक्युद्ध देखने को मिल रहा है उस की भूमिका भी यही है।

शंकराचार्य कहते हैं कि साईं मत वाले हमारे पूजनीय भगवानों शिव, श्री रामचन्द्र, हनुमान आदि को, सांईं बाबा, जो कि भगवान न होकर धरती पर जन्म लेने वाले मानव, के पैरों में स्थान दे कर अपमान करते हैं। अक्सर देखने को मिलता है कि सांईं बाबा की बड़ी मूर्ति तो बीच में होती है और शिव, श्री रामचन्द्र, हनुमान आदि की छोटी मूर्तियां उनके आस पास सजाई जाती हैं। शंकराचार्य का कहना है कि सांई बाबा तो धरती पर जन्म लेने वाले एक इन्सान थे इसलिये उन की पूजा करना गलत है। **मेरा कहना यह है कि शंकराचार्य जी गलत तो आप भी हैं जो कि निराकार, अजन्मा, अनादि ईश्वर के स्थान पर जन्म लेने वाले महापुरूषों जैसे श्री रामचन्द्र है उनको ईश्वर मानते हैं।**

मैं शंकराचार्य जी को याद दिलाना चाहता हूँ कि दसवीं सदी के अंत में उस समय के शंकराचार्य जब काशी विश्वनाथ जी के मन्दिर में शिवलिंग के दर्शन कर के वापिस आये तो उन्हें अपनी गलती का बोद्ध हुआ और उन्होंने कहा–– **"हे ईश्वर मुझे क्षमा करना। यह जानते हुये भी कि आप निराकार, अजन्मा और सर्वव्यापक हैं, मैं आपके दर्शन करने काशी चला गया।"**

कहने का अर्थ यह है कि जब धर्म गुरू स्वयं ही गलत रास्ते पर चल रहे हैं तो दूसरे तो चलेंगे ही।

इस सब कर एक ही समाधान है

हिन्दुओं को ईश्वर का स्वरूप वही मानना होगा जो कि वेदों में है अर्थात ईश्वर एक है उसके गुणों के आधार पर बहुत से नाम है पर मुख्य नाम ओ३म है, जो निराकार, अजन्मा, सर्वान्तर्यामी व सर्वशक्तिमान **जिसका न कोई आकार है न ही जन्म होता है**, वह कण–कण में समाया हुआ है वह हमारे अन्दर भी है, बात सिर्फ अन्दर झांकने की है। जब ईश्वर का हम कोई आकार ही नहीं दिखायेगे तो कोई उनको गलत रूप भी नहीं दे सकता, न होगा बांस न बजेगी बांसुरी।

महान पुरूषों को ईश्वर का स्थान न दें।

ऐसे धर्म गुरूओं से दूर रहें जो कि अपने आप को भगवान बताते हैं और ऐसे अज्ञानियों की बातों में न आयें जो जन्म लेने वालों को भगवान बनाकर अपने स्वार्थ और धंधे के लिये आगे लाते है।

जब सैधान्तिक रूप से यह बात मान ली जायेगी कि ईश्वर एक ही है और उसका न आकार हो सकता है और न हीं वह जन्म लेता है तो मानव को ईश्वर का स्थान देने की परम्परा अपने आप खतम हो जायेगी और आज जो हम कदम–कदम पर हिन्दु धर्म का जो अपमान देख रहें हैं या यूं कहें कि यह धर्म दूसरों के लिये एक मज़ाक बन कर रह गया है, वह स्थिति नहीं रहेगी। इस बात को सभी हिन्दु सोचें चाहे शंकराचार्य हैं या फिर साईं मत वाले या किसी दूसरे मत वाले।

कभी इस अज्ञान को दूर करने का काम आर्य समाज करता था पर दर्भाग्यवश आज आर्य समाज पूर्णतया ऐसे लोगों द्वारा चलाया जा रहा है जो कि पौराणिकों से भी अधिक कर्मकाण्डी हैं। आर्य समाज की जो चार activities हैं कहीं भी चाहे पहले हवन कर दो, अभिनन्दन, स्वागत समाराहों और भजन सन्ध्या। आर्य समाज के दस नियम जिसमें आर्य समाज की विचारधारा है उस का कोई नाम भी नहीं लेता क्योंकि उसमें कमाई नही और यह कहने में डर लगता है कि आर्य समाज मूर्ति–पूजा के खिलाफ है और निराकार, अजलमा अनादि ईश्वर को ही मानता है ऐसे कहने में पंण्डितो को लगता है कि श्रद्धालु बुरा न मान जाये। आज 90% जो उपदेशक, भजनोदेशक हैं वे संस्कृत के विद्वान तो हैं, गुरूकुल से तो पढ़े है, सुरीली आवाज है पर आर्य समाजी नहीं।

महात्मा हंसराज, स्वामी श्रद्धानन्द, गरुदत्त विद्यार्थी प. लेखराम, लाला लाजपत राय ये सभी संस्कृत नहीं जानते थे केवल उर्दू व English जानते थे पर आर्य समाज को बुलंदियों पर ले गये। बड़े बड़े जज, वकील, प्रोफैसर, डाक्टर आर्य समाजी होते थे आज एक भी देखने को नही मिलता।

भारतेन्दु सूद
सम्पादक वैदिक थोरस
231,सैक्टर 15A,चण्डीगढ़ 160047

****

ईश्वर की सहायता के बिना यज्ञ पूरा नहीं होता

● टीकाराम आर्य

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चना सधीनां योगमिन्वति।। ऋग्वेद मंडल 1-सूक्त 18-मंत्र

उपरोक्त वेद मंत्र का शब्दार्थ व व्याख्यान स्वर्गीय पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय जी ने अपनी पुस्तक ''वैदिक मणिमाला'' के पृष्ठ संख्या 5 से 8 तक में निम्न प्रकार किया है।

यस्मात-जिसके, ऋते=बिना, विपश्चितः चन=विद्वान का भी, यज्ञः=यज्ञ या शुभ कर्म, न=नहीं, सिध्यति=सिद्ध होता, सः=वह ईश्वर, धीनां=बुद्धियों के, योगम्=सम्बंध में, इन्वति=व्यापक होता है।

प्रत्येक शुभ काम करने के लिए विद्या तथा बुद्धि चाहिए इस बात को सभी लोग मानते हैं। कौन ऐसा है जो कह सके कि बिना ज्ञान के किसी शुभ काम का सम्पादन हो सकता है। वास्तव में हमारे दुष्कर्म भी बिना ज्ञान के नहीं होते। हम पहले किसी वस्तु को जानते हैं तब उसे करते हैं। इसलिए संसार के सभी देश तथा जातियों के लोग ज्ञानोपलब्धि की महिमा को स्वीकार करते हैं। परंतु एक बात है जिसमें सब लोग सहमत नहीं हैं। वह है ईश्वर की सहायता की आवश्यक्ता। नास्तिकों को अपने ज्ञान पर इतना भरोसा होता है कि वह ईश्वर की सहायता को अनावश्यक समझते हैं। पाश्चात्य देशों में ईश्वर का बहिष्कार कर दिया परंतु हम को किसी भी प्रकार की हानि नहीं हुई। यह बात कहां तक यथार्थ है। इसको यूरोप के विद्वान ही मानने लगे कि उनको अपना समस्थ पुरुषार्थ कुछ अधूरा प्रतीत होता है।

प्रत्येक कार्य में ईश्वर की आवश्यकता है। जब हम किसी शुभ काम को करने बैठें तो क्यों पहले ईश्वर का नाम ले लें। क्यों उससे सहायता की प्रार्थना करें। क्या आवश्यकता है कि हम प्रारंभ में कहें ''हे प्रभु हम निर्बल हैं। हम को इस कार्य में सहायता दीजिए। क्या यह ढकोसला या आडंबर मात्र नहीं है। क्या नास्तिकों के सभी काम बिगड़ जाते हैं। क्या बहुधा ऐसा देखने में नहीं आता कि नास्तिकों ने आस्तिकों की अपेक्षा अधिक सहायता प्राप्त की ओर आस्तिक लोग ईश्वर-ईश्वर जपते ही रह गए।

हाँ, यह हुआ तो अवश्य, यदि हिन्दू धर्म को आस्तिक कहें तो जिस समय सोमनाथ के पुजारी अपने शिव से प्रार्थना करते रहे उतनी देर में महमूद गजनवी ने मन्दिरों को तोड़ फोड़कर आस्तिक पुजारियों को तहस-नहस कर दिया। यदि मुसलमानी धर्म को आस्तिक कहें तो बहुत सी लड़ाईयों में ये अल्लाह-अल्लाह ही करते रह गए। और इनके शत्रुओं ने इन पर विजय प्राप्त कर ली।

फिर वेद क्यों कहता है कि ईश्वर की सहायता के बिना किसी विद्वान का कार्य भी नहीं चलता। वेद मंत्र में, ''विपश्चितः चन'' ऐसा शब्द आया है। ''चन'' का अर्थ है कि कोई भी नहीं। तात्पर्य यह है कि अविद्वान तो कोई कार्य कर ही नहीं सकता किंतु इसके साथ-साथ विद्वान को भी ईश्वर की सहायता आवश्यक होती है। इससे ईश्वर की सहायता का होना अनिवार्य माना गया है। यह आस्तिकता की पराकाष्ठा है। इसमें आस्तिक होने के महत्त्व की ओर संकेत है। आस्तिक्ता केवल मन समझाने के लिए नहीं है। किन्तु प्रत्येक शुभ कार्य के लिए आवश्यक है ऐसा क्यों? इस पर विचार कीजिए।

इसी प्रकार आस्तिकता और खुशामद में भेद है। बहुत से आस्तिक नामधारियों ने यह समझ रखा है यदि किसी मंदिर, मस्जिद या गिरजे में या अन्य पवित्र कहलाए जाने वाले स्थान में खड़े होकर ईश्वर की बड़ी प्रशंसाएँ कर देंगें तो ईश्वर हमारे कामों की अवश्यमेव सिद्धि कर देगा। परंतु तत्त्व तो यह है कि लाखों इस प्रकार के खुशामदी ''ईश्वर ईश्वर' चिल्लाते रहते हैं और उन का कार्य सिद्धि नहीं होता उन को हताश होकर यही कहना पड़ता है कि न जाने ईश्वर हमारी प्रार्थना को क्यों नहीं सुनता।

वेद मंत्र में शब्द 'यज्ञ' आया है। वेद मंत्र यह नहीं कहता कि ईश्वर के भरोसे के बिना यज्ञ सिद्ध नहीं होता। वेद कहता है कि ''यस्माद ऋते'' अर्थात् जिस ईश्वर के बिना शुभ कार्य सिद्ध नहीं होता। इस का तात्पर्य यह है कि चाहे तुम ईश्वर को मानो या न मानो, चाहे उस पर विश्वास करो या न करो। चाहे उससे सहायता माँगो या न माँगो, परंतु एक बात अवश्य है। वह यह है कि जितने शुभ काम संसार में होते हैं। वह ईश्वर की ही सहायता से होते हैं। ईश्वर बिना माँगे भी सहायता करता है अगर कार्य शुभ हो तो और माँगने पर भी सहायता नहीं करता यदि काम शुभ न हो। यही कारण है कि हम सहायता के लिए हाथ पसारे ही बैठे रहते हैं और ईश्वर हमारे शत्रु को विजयी कर देता है। मंत्र का दूसरा भाग इसको स्पष्ट कर देता है। ''सधीनां योगम् इन्वति''। वह बुद्धियों के योग में व्यापक है 'ईश्वर की सब बुद्धियों में व्यापकता बताई गई है। बुद्धि क्या है? बुद्धि वह शक्ति है जो सृष्टि के नियम में ओत-प्रोत है। बुद्धिमान वही है जो इस नियम को समझता है और उसका अवलम्बंन करता है सृष्टि के भिन्न-भिन्न नियम भिन्न-भिन्न विभागों में काम कर रहे हैं। यदि आपने उनको समझ लिया और उनके साथ चल पड़े आप अपने मनोरथ को प्राप्त हो जाएँगे। इस का मोटा दृष्टांत यह लीजिए।

रेलवे स्टेशन के एक ही स्थान से भिन्न-भिन्न दिशाओं में भिन्न-भिन्न गाड़ियाँ जाती हैं। प्रयाग से एक गाड़ी कलकता को एक दिल्ली को, एक जबलपुर को एक लखनऊ को जाती है। यदि आपको इसका यथार्थ ज्ञान हो जाए तो जहाँ पहुँचना है वहाँ का टिकट लेकर गाड़ी में बैठ जाइए। रेल के नियमों का जानना और उसके अनुकूल करना ही आप के यज्ञ सिद्धि का उपाय है। रेल का एक अध्यक्ष है। उस अध्यक्ष को न जानते हों या उसके समक्ष नतमस्तक न होते हों। परंतु इतना जानना तो आवश्यक है कि यह रेल का नियम है यदि आप इस नियम के विरूद्ध करें तो प्रार्थना करने और हाथ पैर जोड़ने पर भी आप अपने अभीष्ट की पूर्ति नहीं कर सकते। कल्पना कीजिए कि आप लाहौर जाने वाली गाड़ी में बैठ गए और रेल के समस्त अध्यक्षों और कर्मचारियों के प्रार्थी हुए कि हम किसी प्रकार कोलकाता पहुँच जाएँ तो क्या नतीजा। आप जोर से चिल्लाएँ कोई फल निकलने का नहीं और निकले भी क्यों? नियम पालन और खुशामद में तो भेद है। क्या रेल का अध्यक्ष यह नहीं कहेगा कि हम खुशामद नहीं मान सकते हम को तो नियम का पालन चाहिए।

इसी प्रकार आस्तिकता और खुशामद में भेद है। बहुत से आस्तिक नामधारियों ने यह समझ रखा है यदि किसी मंदिर, मस्जिद या गिरजे में या अन्य पवित्र कहलाए जाने वाले स्थान में खड़े होकर ईश्वर की बड़ी प्रशंसाएँ कर देंगें तो ईश्वर हमारे कामों की अवश्यमेव सिद्धि कर देगा। परंतु तत्त्व तो यह है कि लाखों इस प्रकार के खुशामदी ''ईश्वर ईश्वर' चिल्लाते रहते हैं और उन का कार्य सिद्धि नहीं होता उन को हताश होकर यही कहना पड़ता है कि न जाने ईश्वर हमारी प्रार्थना को क्यों नहीं सुनता।

वेद कहता है कि ईश्वर सब बुद्धियों में ओत-प्रोत है। यह जो कुछ हो रहा है वह ईश्वर ही कर रहा है। रेल के अध्यक्ष के समान। रेल के अध्यक्ष का मस्तिष्क रेल के समस्त कार्यों में ओत-प्रोत है। रेल का अध्यक्ष रेल की प्रत्येक गति में व्यापक है। तब ही तो रेल अच्छी तरह चल रही है जिस कार्य में अध्यक्ष का मस्तिष्क व्यापक न रह सका उसी में विघ्न या बाधा पड़ जाती है। उसी प्रकार ईश्वर भी संसार के सभी नियमों में व्यापक है। जो काम आप नियमों के अनुकूल करते हैं। वह शुभ है। अतः वह ईश्वर के सहारे ही चल रहा है।

रेल में चलने वाला बच्चा नहीं समझता कि रेल का अध्यक्ष रेल को क्यों कर चलाता है। परंतु वह चलता अवश्य है। इसी प्रकार मूर्ख नहीं जानता कि उसके शुभ कार्य में ईश्वर का कितना हाथ है। कभी विद्वान भी समझता है कि मैं अमुक काम बिना ईश्वर की सहायता के कर रहा हूँ। परंतु यह उस विद्वान की भूल है। यदि ईश्वर नियमों के विरुद्ध करें तो वह विद्वान भी कभी सफल नहीं हो सकता। इसलिए विद्वान पहले ईश्वर को जानने की चेष्टा करता है। फिर उसके अनुकूल आचरण करता है।

अब प्रश्न यह है कि यदि ईश्वर को खुशामद की आवश्यकता नहीं है तो वेद ने हमें यह बात बताई ही क्यों कि बिना ईश्वर के कोई काम सिद्ध नहीं होता? वस्तुतः इस की आवश्यकता थी, सिद्धि दो प्रकार की होती है एक अधूरी, दूसरी पूरी। बच्चा इतना जानता है कि रेल का टिकट लेकर रेल में बैठ जाओ पहुँच जाओगे। दूसरा विद्वान रेल के अध्यक्ष की समस्त व्यापकता का अनुभव करता है। क्या इन दोनों में भेद नहीं? माना कि दोनों ही अभीष्ट स्थान पर पहुँचगे परंतु जो रेल के अध्यक्ष की अध्यक्षता को समझेगा वह पूरी तरह सफल होगा। उसके अनेक अन्य कार्य भी सिद्ध हो सकेंगे। इसलिए विद्वान को जानना चाहिए कि मेरा कार्य बिना ईश्वर के पूरा नहीं हो सकता। वेद कहता है कि ईश्वर बुद्धियों में ओत-प्रोत है। अतः उसके बिना कोई शुभ कार्य नहीं हो सकता। रहा अशुभ काम उसका तो होना ही सम्भव नहीं, अतः उसके लिए प्रार्थना व्यर्थ। इत्योम्

आर्य नगर, दिमौली
पत्रालय-महीउद्दीनपुर
जनपद, मेरठ-उ.प्र.-250205

theaaryasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 27-28/8/2014
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39/57

मन के भीतर की बुराइयां दूर करने से ही मिटेंगे कष्ट: सत्यपाल आर्य

आर्य समाज मंदिर, माडल टाऊन में विशेष मासिक सत्संग की अध्यक्षता डी.ए.वी. मैनेजिंग कमेटी, नई दिल्ली के सचिव सत्य पाल आर्य ने की। उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा कि जालंधर की धरती धन्य है क्योंकि यहां स्वामी श्रद्धानंद जी का जन्म हुआ व उनका सारा जीवन इसी जगह बीता तथा उन्होंने अपना सर्वस्व भी यहीं दान कर दिया। उन्होंने कहा कि जब तक हमारे मन के भीतर की बुराइयां दूर नहीं होंगी तब तक भगवान किसी के कष्ट दूर नहीं करते।

सुरिन्द्र सिंह गुलशन ने– *'मुझे तूने मालिक बहुत कुछ दिया है, तेरा शुक्रिया है,*भजन गाकर ईश्वर की महिमा का गुणगान किया। रश्मि घई ने – *'प्रभु जी तेरी लीला है अपरम्पार'* भजन गाकर संगत को झूमने पर विवश कर दिया। कार्यक्रम का संचालन करते हुए समाज के प्रधान अरविंद घई ने सभी अतिथियों का स्वागत किया। प्रातः की सभा में हुए हवन में मुख्य यजमान श्रीमती के.के. आनंद ने आहुतियां डालीं, जबकि सत्य प्रकाश शास्त्री और बुद्धदेव वेदालंकार ने मंत्रोच्चाण किया। इस अवसर पर प्रिंसीपल सी.एल. कोछड़, प्रिं. एम.एल. ऐरी, प्रिं. अनीता नंदा, प्रिं. विनोद कुमार, सर्वश्री एस. पी. सहदेव अशोक सरीन, ओम प्रकाश महाजन, सुशील शर्मा, अजय गोस्वामी, सुशील चोपड़ा, अजय महाजन, जे.सी. मल्होत्रा, श्रीमती दमयंती सेठी, रजनी सेठी, प्रोमिला अरोड़ा व अन्य भी मौजूद थे। इस अवसर पर अजय गोस्वामी परिवार की ओर से ऋषि लंगर की व्यवस्था की गई।

आर्य समाज लोहगढ़ में साप्ताहिक यज्ञ एवं आर्य प्रवचन आयोजित

डी.ए.वी. सी.सै. हाथी गेट, अमृतसर द्वारा आर्य समाज लोहगढ़ में साप्ताहिक हवन–यज्ञ, आर्य–भजन, सत्संग व प्रवचन कार्यक्रम सफलतापूर्वक आयोजित किया गया। प्रख्यात हिन्दी साहित्यकार, विद्वान्, लेखक, शोधकर्ता डॉ. हरमोहिन्दर सिंह बेदी पूर्वाध्यक्ष हिन्दी विभाग गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर, मुख्य यजमान व वक्ता के रुप में उपस्थित हुए। इस पावन कार्यक्रम को सुचारु रुप से संचालित करने के लिए विद्यालय के चेयरमैन एडवोकेट सुदर्शन कपूर तथा विद्यालय के प्रबन्धक प्रिंसीपल डॉ. के. एन.कौल तथा अन्य स्थानीय प्रबन्धकर्त्री समिति के समस्त सम्माननीय सदस्यों का सराहनीय सहयोग प्राप्त हुआ।

मुख्य वक्ता डॉ. हरमोहिन्दर सिंह बेदी ने अपने सम्बोधन में बताया कि सन् 1857 का स्वाधीनता संग्राम एवं आन्दोलन आर्य समाज के योगदान के बिना अधूरा कहा जाएगा। उन्होंने नारी शिक्षा एवं उसके उद्धार के सन्दर्भ में भी आर्य समाज का योगदान सर्वोपरि बताया है। विद्यालय के प्रबन्धक प्रिंसीपल डॉ. के.एन. कौल ने कहा कि प्रिंसीपल श्री अजय बेरी के नेतृत्व में आर्य समाज की गतिविधियों को नई ऊर्जा मिली है इस शुभ अवसर पर 'आर्य जगत्' के प्रचार के लिए विद्यालय की ओर से 351 नवीन ग्राहक बनाये गए।

विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री अजय बेरी ने आर्य समाज की गतिविधियों को आगे बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रयास रत रहने का संकल्प लिया।

विद्यालय की ओर से मेधावी छात्रों को लेखन सामग्री कापियां, बूट तथा स्कूल यूनीफार्म वितरित की गई। इस अवसर पर श्री जे.के.लूथरा, एडवोकेट कंवर राजिन्दर सिंह, डी.ए.वी. स्कूल हाथी गेट के पूर्व प्रिं.एस.के लूथरा, प्रिं. डा. नीरा शर्मा, प्रिं. परमजीत, प्रिं. सुनीता, प्रिं. निशी शर्मा, डॉ.वी. पी. लखनपाल, व अन्य गणमान्य आर्य समासद् उपस्थित थे।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के महामंत्री एवं सह–मंत्री ने किया काशी दौरा

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली के महामंत्री श्री एस. के. शर्मा जी तथा सह –मंत्री श्री सत्यपाल जी ने काशी की पुण्यभूमि का दौरा किया। प्रादेशिक सभा के दोनों अधिकारियों ने स्थानीय आर्यसमाजी लोगों के साथ एक बैठक की तथा उनकी समस्याओं को सुना। यज्ञशाला एवं स्मृति स्थल की जर्जर हालत को देखकर साथ ही स्थानीय आर्य समाजियों में आपसी समन्वय की कमी से उत्पन्न अर्भाभाव में दैनिक एवं साप्ताहिक यज्ञ, हवन और सत्संग की कमी से उत्पन्न अर्थाभाव में दैनिक एवं साप्ताहिक यज्ञ, हवन और सत्संग का न होना श्री शर्मा जी के मनोमस्तिष्क पर एक गहरा प्रभाव छोड़ गया। फलतः उन्होंने वाराणसी आर्य समाज को प्रत्येक महीने यज्ञ–हवन में खर्च आने वाले घी एवं हवन सामग्रियों के खर्च वहन करने का वचन दिया जिसके लिए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, बिहार के प्रधान, डॉ. उमाशंकर प्रसाद जी को निर्देश दिए गए।

इसके उपरान्त सुविख्यात व्याकरणाचार्य पाणिनी के नाम पर स्थापित पाणिनी कन्या महाविद्यालय वाराणसी के परिसर में भी गए। प्राचार्या डॉ. नंदिता शास्त्री द्वारा इनके सम्मान में एक संक्षिप्त बैठक आयोजित की। उस महाविद्यालय की बालिकाओं द्वारा पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' के सूत्रों का सस्वर पाठ किया गया जिसे ध्यान पूर्वक उन्होंने सुना एवं काफी प्रभावित हुए। इस कन्या महाविद्यालय के विकास हेतु श्री शर्मा जी ने 11000/– रुपये की राशि दान स्वरूप देने की घोषणा की जिसे आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि, उप सभा, बिहार के प्रधान डॉ. यू.एस. प्रसाद जी ने आर.टी.जी.एस. विधि से राशि प्रदान की।

इस प्रकार आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली के महामंत्री श्री एस.के. शर्मा जी एवं सहमंत्री श्री सत्यपाल जी का दौरा सराहनीय एवं महत्वपूर्ण रहा।

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**